मुद्रकः—,
त्रैलोक्यनाथ शर्मा,
" जमुना प्रिन्टिंग वर्क्स, "
मथुरा।

सद्विचार पुस्तक माला नं० ६

२३ S.K
८

* मुक्ति का मार्ग *

श्रीयुत जैम्स एलन के " The way of Peace "
नामक ग्रन्थ का भावानुवाद ।

अनुवादक—

श्रीयुत बाबू दयाचन्द्र जी गोयलीय, बी. ए.

प्रकाशक—

हिंदी-साहित्य-भंडार, मल्हीपुर ।
(सहारनपुर)

तृतियावृत्ति } अप्रैल १९१५ { मूल्य ।≡)

मुद्रक—
त्रैलोक्य नाथ शर्मा,
" जमुना प्रिंटिंग वर्क्स, "
मथुरा।

निवेदन।



विदेशों में श्रीयुत जेम्स एलन की पुस्तकों का कितना आदर है इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि वहां उनकी प्रत्येक पुस्तक की कई कई हजार प्रतियां बिक चुकी है सौभाग्य से अँग्रेजीदां भारतवासी भी उनके ग्रंथो से अब लाभ उठाने लगे हैं। परन्तु दुःख के साथ लिखना पडता है कि हिंदी में उनकी पुस्तकों का अभी तक अनुवाद बहुत कम हुआ है, जिससे हिन्दी जाननेवाले उनकी शिक्षाओं से वंचित रहते हैं। इसी कमी को दूर करने के लिये हमने उनकी पुस्तकों को प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। यह पांचवी पुस्तक है।

इस पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि स्वार्थ और माया के त्याग देने से, पाशविक वासनाओं पर जय प्राप्त करने से और इन्द्रिय-निग्रह करने से मनुष्य को शांति प्राप्त होती है। उस समय उसको पूर्ण ज्ञान हो जाता है। वह ब्रह्म में लीन होजाता है और उसमें और परमात्मा में कोई भेद भाव नही रहता। इसी का नाम परम-शांति और मुक्ति है। इस पुस्तक के पढ़ने और इसके अनुसार प्रवृत्ति करने से मनुष्य संसार रूपी घोर समुद्र से तर कर मुक्तपुरी पहुंच जाता है कि जहां उसे अनंत काल तक अनंत सुख प्राप्त रहेगा। भारतवासियों के लिए, जिनका अभीष्ट आत्मोन्नति करना और मुक्ति प्राप्त करना है यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। हमें आशा है कि हिंदी भारत वासी इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठावेंगे।

लखनऊ,
२७-२-१८

कृष्णचन्द्र गोयलीय।

* विषय-सूची *





मुक्ति का मार्ग।



१. ध्यान की शक्ति।



आत्मा का ध्यान करने से मनुष्य मुक्ति के मार्ग पर लग जाता है। यह एक ऐसी नसैनी है कि जिसके द्वारा हम इस लोक से स्वर्गलोक में अज्ञानता से ज्ञान-मंदिर में और दुःख से शांति गृह में प्रवेश कर सकते हैं—अर्थात् आत्मा का ध्यान और चिन्तवन करने से मनुष्य को मोक्षपद की प्राप्ति हो जाती है। प्रत्येक महात्मा ने इस नसनी पर से चढ़ कर मुक्ति पद को प्राप्त किया है। प्रत्येक पापात्मा जीव को कभी न कभी अवश्य इस नसैनी पर चढ़ना होगा और परमपिता जगदीश्वर के पास शिवपुरी के जाने वाले प्रत्येक यात्री को, जिसने स्वार्थ को सर्वथा त्याग दिया है और संसार को असार और क्षणभंगुर जान कर उससे मुंह मोड़ लिया है, एक न एक दिन अवश्य इसके सुनहरे डंडों पर अपना पग जमा कर रखना

होगा। बिना इसके सहारे के न तुम ईश्वर-दर्शन कर सकते हो, न तुम्हें केवल-ज्ञान हो सकता है और न तुम परम शांति और अनंत सुख को प्राप्त कर सकते हो।

अब प्रश्न यह है कि ध्यान किसको कहते हैं। किसी विषय पर कुछ समय तक एकाग्र चित्त होकर इस अभिप्राय से विचार करना कि हम उसे पूर्ण रूपसे समझ सकें, इसका नाम ध्यान है। जिस विषय पर मनुष्य निरन्तर विचार करता रहता है उसे केवल वह समझ ही नहीं लेता है, किंतु उसके अनुरूप होता जाता है और उसकी गंध उसकी नस नस में फैलतीजाती है कारण कि वह उसके शरीर का एक अंग बन जाता है अतएव यदि तुम सदैव स्वार्थपरता और नीचता की बातोंपर विचार करते रहोगे तो एक दिन तुम निश्चय से नीच और स्वार्थी बन जाओगे, परंतु इसके विपरीत यदि तुम्हारे मन में सदैव पवित्रता और निःस्वार्थता के भाव आते रहेंगे तो तुम अवश्यमेव पवित्र और निःस्वार्थ बन जाओगे।

यदि मुझे यह ज्ञात होजाय कि तुम अधिकतर किस विषय पर सोचते रहते हो और एकांत के समय तुम्हारी आत्मा किस विषय की ओर स्वभावतः आकर्षित होती है तो मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम शोक-सागर में गोते लगारहे हो अथवा सुख-शांति में निमग्न हो, मुक्ति-मार्ग पर लग रहे हो अथवा विषय-वासना में लिप्त हो।

जो मनुष्य निरन्तर किसी गुण विशेष का ध्यान करता रहता है, नियम से वह गुण उस में आ जाता है अतएव तुम जिस विषयका ध्यान करो वह उच्च और उत्तम हो न कि नीच

और पतित, कि जिससे जब कभी तुम्हारे मन में उसका विचार आजाए तो तुम भी उच्च और उत्तम बन जाओ। तुम्हारा ध्येय पवित्र और स्वार्थ-रहित होना चाहिए। इससे तुम्हारा हृदय शुद्ध होगा, तुम ईश्वर के निकट पहुंच सकोगे और उस अज्ञान अन्धकूप से बच जाओगे कि जहां से तुम्हारा निकलना सर्वथा असम्भव है।

सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन और ज्ञानकी उन्नति इसी ध्यान पर निर्भर है। ध्यान के बल से ही प्रत्येक ऋषि, मुनि और महात्मा ने उन्नति की है। बुद्धदेव ने ब्रह्म और ज्ञान का इतना चिन्तवन कियाथा कि अन्तमें वे यह कह सकते थे कि मै हीपूर्ण ब्रह्म और ज्ञान रूप हूं। महात्मा ईसा ने परमात्मा के अस्तित्व पर इतना गहरा विचार कियाथा कि अंत में वे यह कह सकते थे कि 'मै और मेरा परम पिता (परमात्मा) एक है, दो नहीं हैं।

एकाग्रचित्त होकर इश्वरीय गुणों के चिन्तवन करने का नामही वास्तविक स्तुति औरप्रार्थना है। इसीके द्वारा आत्मा धीरे धीरे उन्नति करती हुई परमात्म-अवस्था तक पहुॅचजाती है। विना ध्यान के केवल अभिलाषा रखना और प्रार्थनाकरना ऐसा ही है जैसा कि विना शरीर के आत्मा। इससे मनुष्यका मन और हृदय दु.ख और पाप से मुक्ति नहीं हो सकता। यदि तुम प्रतिदिन बुद्धि, शांति, ज्ञान और पवित्रता के लिए प्रार्थना कर रहे हो और जिस वस्तु के लिए प्रार्थना करतेहो वह अभी तुम से दूर है तो इसके ये अर्थ हैं कि तुम प्रार्थना किसी वस्तु के लिए कर रहे हो और तुम्हारे मन और चरित्र पर किसी

अन्य वस्तु का अधिकार है। यदि तुम ऐसी उद्दंडता न करोगे और अपने मन को उन वस्तुओं से हटा लोगे जिनमें स्वार्थ के वशीभूत होकर फंसनेके कारण तुम्हें इच्छित, निर्दोष गुणो की प्राप्ति नहीं होती और यदि तुम ईश्वरसे उस वस्तु के लिए कभी प्रार्थना नहीं करोगे कि जिसके तुम योग्य नहीं हो, अथवा यदि तुम उस से उस प्रेम अनुकम्पा की भी इच्छा नहीं करोगे कि जिसको तुम स्वयं दूसरों के प्रति प्रदर्शित करने के लिए तैयार नही हो, किंतु एक मात्र सत्य की इच्छा और अभिलाषा से विचार करना और कार्य करना प्रारम्भ करोगे तो तुममें दिन दिन उन गुणों की प्राप्ति होती जायगी, यहां तक कि एक दिन तुम में और उन में कोई भेद भाव न रहेगा अर्थात् तुम और वे गुण एक रूप हो जाओगे।

यदि कोई मनुष्य किसी सांसारिक लाभ की इच्छा रखता है तो उसे चाहिए कि उसकी प्राप्ति के लिए श्रम और उत्साह से कार्य करे, परंतु जो मनुष्य हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है और यह आशा करता है कि केवल इच्छा या प्रार्थना करने से ही उस लाभ की उसे प्राप्ति हो जाए, वह निरा मूर्ख है अतएव तुम इस मूर्खता के विचार को अपने हृदय से निकाल दो कि तुम्हें बिना श्रम या उद्योग किए ही स्वर्गीय पदार्थों की प्राप्ति हो जायगी। जब तुम सच्चे दिल से सत्य के साम्राज्य में काम करना शुरू करोगे उसी समय तुम्हें स्वर्गीय पदार्थों की प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं और जिस आध्यात्मिक लाभ के तुम इच्छुक हो जब तुम धैर्य और दृढ़ता के साथ उद्योग करके उसको प्राप्त कर लोगे तो उसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा।

यदि तुम वास्तव में सत्य के अभिलाषी हो न कि केवल इन्द्रिय-लोलुपता के और यदि तुम सत्य को सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से बढ़ कर चाहते हो यहाँ तक कि हर्ष और आनन्द से भी उच्चतर समझते हो तो तुम स्वयमेव उसकी प्राप्ति के लिये आवश्यक उद्योग करोगे।

यदि तुम दुःख और शोक से मुक्त होना चाहते हो, यदि तुम उस निर्दोष पवित्रता का स्वाद लेना चाहते हो जिसकी तुम हृदय से इच्छा रखते हो और प्रार्थना करते हो, यदि तुम ज्ञान और बुद्धि प्राप्त करना चाहते हो और यदि तुम नित्य और पूर्ण शांति के पद पर पहुँचना चाहते हो तो ध्यान के मार्ग को ग्रहण करो और तुम्हारा ध्येय सत्य और परमात्म अवस्था होनी चाहिये।

प्रारम्भ में ध्यान और निरर्थक चिन्ता में भेद होना चाहिये। ध्यान में कोई बात असत्य, व्यर्थ या निरर्थक नहीं होती। उसमें जो कुछ होता है सत्य, सार्थक और विचार पूर्वक होता है। निष्पक्ष और शुद्ध हृदय होकर आत्मा और परमात्मा का चिन्तवन करना, इसी का नाम ध्यान है। इस प्रकार चिन्तवन करने से तुम्हारे भीतर पक्षपात न आने पाएगा और तुम स्वार्थ को सर्वथा भूल कर केवल इतना ही याद रख सकोगे कि हम सत्य और ज्ञान की जोह कर रहे हैं। ऐसा करने से तुम्हारी भूतकाल की सम्पूर्ण भूलें एक एक करके दूर हो जाएँगी और तुम धैर्य्य और सन्तोष के साथ सत्य के प्रकाश के इच्छुक रहोगे। अपने हृदय-मंदिर में तुम इस बात को अच्छी तरह से समझलोगे कि हम सब में एक ऐसा गुप्त और गुह्य स्थान है कि

जहाँ पर पूर्ण सत्य और ज्ञान विराजमान है और उसके चहुँ-ओर चाम और मांस की दीवार पर दीवार खड़ी हुई है जो उसे देखने नहीं देती और उस पर आवरण डाले हुए है। ज्ञान का प्रकाश क्या है? केवल उस मार्ग का साफ करना और खोल देना है जहाँ से कि गुप्त प्रकाश प्रगट हो जाए न कि किसी वाह्य प्रकाश का भीतर प्रवेश करना, कारण कि वास्तव में प्रकाश हमारे भीतर मौजूद है। यह समझना कि यह कोई वाह्य वस्तु है, केवल भ्रम और अज्ञानता है।

ध्यान के लिए दिन का कोई समय विशेष नियत कर लो और उस समय को केवल ध्यान में ही व्यतीत करो, अन्य कोई काम न करो। सब से अच्छा समय सवेरे का है जबकि प्रत्येक वस्तु शांत अवस्था में होती है। उस समय सम्पूर्ण प्राकृतिक अवस्थाएँ तुम्हारे पक्ष में होगी, रात्रि को शरीर के देर तक भूखा रहने के कारण तुम्हारी कषाएँ और वासनाएँ मंद होंगी, पहिले दिन के तुम्हारे सारे कष्ट जाते रहे होंगे और तुम्हारा मन स्वस्थ और शांत होने के कारण आध्यात्मिक ज्ञान को स्वीकार करने के लिये तैयार होगा। परन्तु हाँ इस बात का उद्योग तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा कि तुम आलस और इन्द्रिय-लोलुपता का सर्वथा त्याग कर दो। यदि तुम इस प्रकार का उद्योग न करोगे तो याद रक्खो तुम कुछ भी उन्नति नहीं कर सकोगे।

आत्मिक उन्नति के साथ साथ मानसिक और शारीरिक उन्नति भी होगी। जो लोग आलसी हैं और विषय-वासना में ग्रसित हैं उन्हें सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। जो मनुष्य हृष्ट पुष्ट,

स्वस्थ और बलवान् होने पर भी सवेरे के शांत और बहुमूल्य समय को आलस और निद्रा में नष्ट कर देता है वह कदापि इस योग्य नहीं है कि उन्नति कर सके और स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कर सके।

जिस मनुष्य को यह ज्ञान हो गया है कि मै उन्नति कर सकता हूं और उच्च पद को प्राप्त कर सकता हूँ और जो मनुष्य उस अज्ञानांधकार को दूर करना चाहता है, जिसने दुनियाको ढक रक्खा है, वह तारों के अस्त होने से पहले ही गज़रदम जब कि सम्पूर्ण संसार के लोग सोए हुए होते हैं, उठता है और अपनी कषायों और वासनाओं को मद करके उच्च और पवित्र आकांक्षाओं द्वारा सत्यार्थ ज्ञान प्राप्त करने और ईश्वर-दर्शन करने का उद्योग करता है। स्मरण रहे जिन महर्षियों ने ज्ञान प्राप्त किया है उन्होंने उसके लिए अहर्निश उद्योग किया है। उनके मित्र आलस्य और निद्रा में पड़े सोया करते थे, परन्तु वे रातों जागा करते थे और ज्ञान-प्राप्त के लिये कठिन तपस्या किया करते थे।

इस संसार में ऐसा कोई महात्मा, ज्ञानी अथवा ऋषि मुनि नहीं हुआ कि जो प्रात काल न उठता हो। महात्मा ईसा नित्य सवेरे उठा करते थे और ईश्वर-भजन के लिये ऊचे, निर्जन पहाड़ों पर चले जाया करते थे। बुद्ध महाराज सदा सवेरे सूर्योदय से एक घंटा पहले उठ कर ध्यानस्थ हो जाते थे। उनके शिष्यों को भी ऐसा ही करने की आज्ञा थी।

यदि तुम्हें अपने दैनिक कार्य बहुत सवेरे करने पड़ते हैं और उनके कारण सामयिक और ध्यान के लिए तुम सवेरे का समय नहीं दे सकते हो, तो फिर रात्रि के समय एक घंटा

निकालो और यदि तुम्हारा दैनिक कार्य इतना कठिन है कि दिन में समाप्त नही होता, रात्रि में भी देर तक करना पड़ता है और कार्य की समाप्ति पर तुम इतने थक जाते हो कि फिर किसी दूसरे कार्य के करने की तुममें शक्ति और रुचि नहीं रहती तब भी तुम्हें निराश नही होना चाहिए। दिन में जो कुछ बीच में तुम्हें समय मिलता है उसमें ही तुम ध्यान लगा सकते हो। तुम्हारा कितना ही समय योंही व्यर्थकी गपशप में नष्टहो जाता है। यदि तुम चाहोतो उसेभी काममें लासकते हो। समयनहीं मिलता, यह कहना केवल बहाना है। यदि तुम्हारी इच्छा और रुचि हो तो चाहे तुम्हारे पास कितना ही काम हो फिरभीतुम समय निकाल सकते हो। और यदि मान भी लिया जाय कि तुम्हारा काम ऐसा है कि चौवीस घंटे बराबर कल की तरह चलता रहता है, कभी बीच में नही रुकता तो उस दशामें भी काम में लगे हुए तुम ध्यान कर सकते हो। तुमने प्रसिद्ध तत्व-ज्ञानी महात्मा जैकब बोएम का नाम सुना होगा। उन्होंने उस समय ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया था कि जब वे लगातार घंटो तक मोची का अर्थात् जूते बनाने का काम किया करते थे। प्रत्येक अवस्था में मनुष्य ध्यान और चिन्तवन कर सकता है। जिन लोगो को निरन्तर श्रम करना पड़ता है वेभी ध्यान करने और ब्रह्मज्ञान और ईश्वर-दर्शन प्राप्त करने के आनंद से वंचितनहीं रह सकते।

आत्म-चिन्तवन करना, अपने मनको सधाना और इन्द्रिय-निग्रह करना इन दोनो में कार्य कारण का अविनाभावी संबंध है। अतएव तुम्हें चाहिए कि तुम अपने ही पर विचार करना प्रारम्भ करो कि जिससे तुम अपने आपको अच्छी तरह से

जान सको और समझ सको। कारण कि याद रक्खो कि सबसे बड़ा उद्देश्य और आदर्श जो तुम्हारी दृष्टि के सामने होना चाहिए यह है कि तुम अपने अवगुणों को और अपनी त्रुटियो को दूर कर दो कि जिससे तुम्हें निश्चय से सत्य का ज्ञान हो सके। उस समय तुम अपने भावो, विचारो और कार्यों की समालोचना करने लगोगे, उनका अपने आदर्श से मिलान करोगे और उनको पक्षपात-रहित होकर शांत चित्त से देखोगे। इस प्रकार तुम्हारा मन और तुम्हारी आत्मा दोनों निरतर साथ साथ उन्नति करते जाएँगे। इसी की वास्तव में तुम्हारे लिए अत्यत आवश्यकता है। जब तक मनुष्य मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की उन्नति नहीं कर लेता तब तक उसका जीवन व्यर्थ और निष्फल है। यदि तुम्हें क्रोध अधिक आता है अथवा तुम्हारे भीतर दूसरों के प्रति घृणा का भाव अधिक है तो उस समय तुम प्रेम और शांति पर विचार करोगे कि जिससे तुम पर तुम्हारी क्रूरता और मूर्खता भली भाँति प्रगट हो जाए और तुम उनसे घृणा करने लगो। फिर तुम प्रेम, पवित्रता, क्षमा और शांति के विचारो में अपना जीवन व्यतीत करने लगोगे और जितना तुम अपनी नीच वासनाओं को दबा कर उच्च आकांक्षाएँ करोगे, उतना ही धीरे धीरे प्रेम का ईश्वरीय प्रभाव तुम्हारे हृदय तट पर पड़ता जाएगा और तुम्हें इस बात का ज्ञान हो जाएगा कि यह नियम तुम्हारे जीवन के प्रत्येक कार्य में कितना प्रभाव जनक है और जब तुम इस ज्ञान को अपने विचारो, शब्दों और कार्यों पर लगाओगे तो तुम दिन दिन अधिक सभ्य, सुसील, प्रेमी और धर्मात्मा बनते जाओगे। ध्यान की महान् शक्ति के सामने तुम्हारी सर्व प्रकार की मूर्खता, स्वार्थपरता और अज्ञानता नष्ट हो जाती

है और ज्यों ज्यों तुम्हारे भीतर से पाप और वासनाएँ निकलती जाएँगी, त्यों त्यों सत्य और ज्ञान का स्पष्ट और निर्मल प्रकाश तुम्हारी आत्मा को पवित्र और उज्वल बनाता जाएगा।

इस प्रकार ध्यान करने से तुम सदा अपने एक मात्र शत्रु अर्थात् अपनी स्वार्थयुक्त वासना से सुरक्षित रहोगे और अपने भीतर सत्य और ज्ञान का प्रकाश करोगे। तुम्हारे ध्यान और योग-साधना का यह प्रत्यक्ष फल होगा कि तुम में शांति और आत्मिकबल पैदा हो जाएगा कि जो जीवन की कठिनाइयों में तुम्हारे लिए एक सहारा होगा। पवित्र विचारों की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। एकांत में ध्यान और योगाभ्यास के समय जो बल और ज्ञान प्राप्त होता है वह आत्मा को दु:ख, शोक और चिंता के समय में मुक्ति की याद दिला कर प्रफुल्लित कर देता है।

ध्यान के बल से जितना तुम में ज्ञान बढ़ता जाएगा उतनी ही तुम अपनी स्वार्थयुक्त वासनाओं को जो अस्थिर, क्षणभंगुर और दुःख और शोक का कारण होती हैं, त्याग करते जाओगे और अधिक बल और विश्वास के साथ नित्य और स्थाई सिद्धांतो पर दृढ़ता से जमे रहोगे और स्वर्गीय सुख का अनुभव करोगे। ध्यान करने से ईश्वरीय सिद्धान्तो का ज्ञान हो जाता है और एक ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि जिसके द्वारा हम उक्त सिद्धान्तों पर पूर्ण रूप से विश्वास और श्रद्धा न कर सकते हैं और इस प्रकार हम ईश्वर में तल्लीन हो जाते हैं। अतएव ध्यान का फल यह है कि हम ब्रह्मज्ञान के साथ साथ परम शांति लाभ करते हैं।

ध्यान में तुम्हारे विचार तुम्हारी वर्तमान मानसिक अवस्था

से प्रगट होने चाहिएं। याद रक्खो तुम दृढ़ता से क्रमशः उन्नति करते हुए ही सत्य और ज्ञान को प्राप्त कर सकते हो। यदि तुम सच्चे और पक्के हिन्दू हो तो महात्माओं के चरित्र की निर्दोष पवित्रता और उत्तमता पर निरंतर विचार करते रहो और अपने जीवन में मन, वचन, कार्य से उनकी शिक्षाओं का पालन करो कि जिससे तुम उन जैसी पूर्णता और पवित्रता प्राप्त कर लो। उन धर्म का ढोंग बनानेवालों की तरह न चलो जो सत्य के अटल सिद्धांत पर विचार करना नहीं चाहते और अपने गुरू के वचनों के अनुसार भी कार्य नहीं करते, किंतु केवल यह चाहते हैं कि बाह्य में लोगों को दिखलाने के लिए ऊपरी मन से पूजा पाठ किया करें, अपने ही साम्प्रदायिक विचारों पर जमे रहें और पाप और दुःख के अथाह समुद्र में गोते लगाते रहें। वास्तविक अभिप्राय यह है कि ध्यान के बल से पक्षपात को छोड़ कर और देवी-देवता अथवा धर्म या साम्प्रदाय विशेष का रचमात्र भी विचार न करके उच्चतर होने का उद्योग करो और व्यर्थ के झूठे रीति रिवाजों को त्याग कर अज्ञानताके कूप से निकलने का प्रयत्न करो। इस प्रकार ज्ञान और विवेक के राजमार्ग पर चलने से और चित्त को एकाग्र करके ईश्वर-की ओर लगाने से तुम कहीं नहीं रुकोगे, बराबर आगे बढ़ते हुए चले जाओगे, यहां तक कि तुम अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाओगे अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त कर लोगे।

जो मनुष्य सच्चे दिल से एकाग्र-चित्त होकर ध्यानमें बैठता-है वह पहले दिन तो सत्य और ब्रह्म को अपने से बहुत दूर देखता है। परन्तु फिर दिन दिन निकटतर देखता जाता है। ब्रह्मवाक्यों पर चलने वाला मनुष्य ही सत्य या ब्रह्म को समक्ष

सकता है, कारण कि यद्यपि विचारों के विशुद्ध और पवित्र होने से सत्य मार्ग दिखलाई तो दे जाता है, परन्तु उसकी प्राप्ति उसी समय होती है जब कि उसके लिये उद्योग किया जाता है।

महात्मा बुद्ध का कथन है कि जो मनुष्य स्वार्थ और माया जाल में फंसा रहता है और ध्यान में अपने मनको नहीं लगाता वह जीवन के वास्तिविक उद्देश्य को भूल कर सांसारिक सुखो को प्राप्त करना चाहता है। उसके लिए एक समय ऐसा अवश्य आएगा कि जब वह उन महात्माओं को ईर्षा की दृष्टि से देखेगा कि जो ध्यान में तन मन से लगे हुए है। बुद्ध महाराज ने अपने शिष्यों को निम्न लिखित पांच प्रकार का ध्यान करने का उपदेश दिया है।

पहिला ध्यान प्रेम का है। इस ध्यान में तुम अपने मन को इस प्रकार सधाते हो कि जीव मात्र का भला चाहते हो, यहां तक कि अपने शत्रुओ से भी भ्रातृभाव रखते हो। इसी का नाम 'सत्वेषु मैत्री' है इसमें तुम्हारी निरन्तर यही भावना रहती है कि सब का भला हो।

दूसरा ध्यान दया और करुणा का है। इसमें तुम यह चिन्तवन करते हो कि सब जीव दुःख में है और अपनी विचार शक्ति के द्वारा उनके दुःख का चित्र भी अपने हृदय पट पर खीचते हो कि जिससे तुम्हारे मन में उनके प्रति दया का भाव उत्पन्न हो और तुमसे जो कुछ बन सके उनकी सहायता करो।

तीसरा ध्यान हर्ष और सुख का है। इसमें तुम दूसरों के सुख का चितवन करते हो और उनके सुख में सुख मनाते हो।

चौथा ध्यान अपवित्रता का है । इसमें तुम रोग, शोक और पाप के बुरे परिणामों पर विचार करते हो और यह चिंतवन करते हो कि इन्द्रिय-जन्य सुख बहुधा कैसे तुच्छ होते हैं और उनके कैसे भयंकर परिणाम होते हैं ।

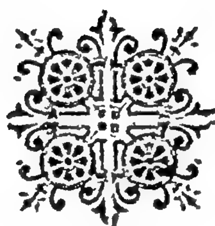
पांचवां ध्यान शांति का है । इसमें तुम्हारे मन से राग द्वेष, हानि लाभ, न्याय और अत्याचार के विचार निकल जाते हैं । न तुम्हें किसी वस्तु की चाह होती है और न किसी की आवश्य-कता होती है । तुम्हारे भीतर पूर्ण रूप से शांति रहती है और तुम प्रत्येक अवस्था में सुख का अनुभव करते हो ।

इन बातों का चिंतवन करके बुद्ध देव के शिष्यों ने सत्यार्थ ज्ञान को प्राप्त किया था । तुम भी इन्हीं बातों का और इसी रूप में चिंतवन करो, इसकी विशेष आवश्यकता नहीं, परन्तु हां इस बात की आवश्यकता है कि तुम्हारा उद्देश्य सत्यार्थ ज्ञान की प्राप्ति होना चाहिए और तुम्हें अपने जीवन को निर्दोष बनाने और हृदय को विशुद्ध करने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए । अत-एवं, जब तुम ध्यान में बैठो तो तुम्हारे मन में सार्व प्रेम अर्थात् जीव मात्र के प्रति मैत्री भाव होना चाहिए । द्वेष और संकीर्णता को हृदय से निकाल कर सब का भला चिंतवन करना-चाहिए, यहां तक कि तुम्हारा हृदय विषय-वासना और ईर्षा और द्वेष से रहित होकर जीवमात्र के कल्याण के उपाय सोचने लगे और सब से प्रेम और सहानुभूति करने लगे । जिस प्रकार फूल सवेरे के प्रकाश को लेने के लिए पंखडियो को खोल देता है, उसी प्रकार तुम भी अपनी आत्मा को उदारता के साथ ईश्वर के देदीप्यमान प्रकाश के भीतर आने के लिए खुले

रक्खो। उच्च आकांक्षाओं के द्वारा उन्नति करो। निःशंक और निर्भय रहो और उच्चतम बातो का विश्वास करो। तुम्हें इस बात का विश्वास होना चाहिए कि पूर्ण पवित्रता, नम्रता और विशुद्धता का जीवन व्यतीत किया जा सकता है और पूर्ण सत्य का मनुष्य अनुभव कर सकता है। और तो क्या, आत्मा परमात्मा बन सकती है। जो मनुष्य विश्वास करता है और जिसका दृढ श्रद्धान होता है वह बहुत शीघ्र स्वर्गीय शिखरो पर चढ़ जाता है, परंतु इसके विपरीत जिन्हे श्रद्धान नहीं होता वे नीची दलदली घाटियो के अन्धकूप में पड़े रहते है और नाना दुःख और कष्ट सहते रहते हैं।

इस प्रकार श्रद्धान लाने, उच्च आकांक्षा करने और ध्यान करने से तुम्हारे आत्मिक अनुभव सुन्दर और आनंदप्रद होगे और ईश्वर की ओर से जो प्रकाश तुम्हारे भीतर होगा वह अधिक देदीप्यमान होगा। उससे तुम्हारी आत्मा परमानद का अनुभव करेगी। जितना तुम ईश्वरीय प्रेम, ईश्वरीय न्याय, ईश्वरीय पवित्रता, ईश्वरीय नियम और स्वयं ईश्वर का अनुभव करोगे उतना ही अधिक सुख और आनंद तुम्हें प्राप्त होगा, पुरानी चीजें जाती रहेंगी और उनके स्थान में सब चीज़े नई हो जाएँगी। इस स्थूल जगत का परदा, जो अज्ञानी मनुश्य की आँखो मे मोटा और गाढ़ा मालूम होता है, परन्तु ज्ञानी मनुष्य को आंखो में बारीक और जाली जैसा दिखाई देता है, एक बारगी तुम्हारे सामने से उठ जायगा और आत्मिक जगत् प्रगट हो जाएगा, जहाँ समय और काल का बंधन जाता रहेगा और तुम नित्य और स्थाई लोक में प्रवेश कर लोगे। सब तुम जन्म

मरण के जंजाल से सदैव के लिए छूट जाओगे और शोक और दुःख का सर्वथा अभाव हो जाएगा । दूसरे शब्दों में तुम आत्मा से परमात्मा बन जाओगे और अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख प्राप्त कर लोगे, जिनका कभी विनाश नहीं होता ।



२. ब्रह्म और माया।

मनुष्य की आत्मा के समरस्थल में दो सरदार राज्य सिंहासन के प्राप्त करने और हृदय पर शासन करने और अधिकार जमाने के लिए निरंतर लडते रहते हैं। उनमें से एक माया है जिसे इस दुनिया का राजकुमार भी कहते हैं और दूसरा ब्रह्म है जिसे परम पिता परमात्मा भी कहते हैं। माया का सरदार उद्दंड और द्रोही है और उसके शस्त्र काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक हैं जो सब पाप और अंधकार के साधन हैं, परंतु ब्रह्म सरदार नम्र और सभ्य है और उसके शस्त्र सभ्यता, नम्रता, प्रेम, पवित्रता और संतोष आदिक हैं जो सब पुण्य और प्रकाश के साधन हैं।

प्रत्येक आत्मा में यह लड़ाई होती रहती है और जिस प्रकार एक सिपाही दो शत्रु सेनाओं में एक समय में सम्मिलित नहीं हो सकता उसी प्रकार प्रत्येक हृदय या तो माया की सेना में भरती होता है या ब्रह्म की सेना में। दोनों में कोई बाँट बट-वारा नहीं होता। अर्थात् यह नहीं हो सकता कि कोई हृदय माया के वश में भी हो और ब्रह्म के भी। माया अलग है और

ब्रह्म अलग है। जहाँ माया है वहाँ ब्रह्म नहीं और जहां ब्रह्म है वहाँ माया नही। यही वचन महात्मा बुद्ध के है। महात्मा ईसा ने भी कहा है कि एक आदमी दो मालिको की चाकरी नही कर सकता है, कारण कि या तो वह इससे द्वेश करेगा और उससे प्रेम करेगा या उससे प्रेम करेगा और इससे द्वेष करेगा। किसी ने सच कहा है कि माया और राम दोनों नहीं मिल सकते।

ब्रह्म-मार्ग ऐसा सीधा सादा और बेलाग है कि उसमें किसी प्रकार का मोड पेंच और बंधन नही है, परन्तु माया का मार्ग ऐसा बांका और टेढा है और इस प्रकार स्वार्थ और वासना से घिरा हुआ है कि उसमें सैकड़ों मोड़पेंच हैं। जो लोग धोके से माया के जाल में फँसे हुए हैं उनका यह विचार और विश्वास सर्वथा झूठा है कि हम हर एक सांसारिक इच्छा की पूर्ति कर सकते हैं और साथ में मुक्ति के मार्ग को भी प्राप्त कर सकते हैं। जो सच्चे दिल से मुक्ति के मार्ग के इच्छुक हैं वे स्वार्थ और माया को त्याग कर ही मुक्ति-मार्ग को ग्रहण करते हैं और स्वार्थ और सांसारिक वांछाओं से अपनेको सुरक्षित रखते हैं।

क्या तुम वास्तव में ब्रह्म या सत्यार्थ ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हो? यदि तुम्हारे मन में ऐसी चाह है तो तुम्हें अपने स्वार्थ के त्याग करने और माया के नाश करने के लिये तैयार होना चाहिये, कारण कि ब्रह्म अपने पूर्ण प्रकाश में उसी समय प्रकट हो सकता है और जाना जा सकता है जब कि स्वार्थ और माया का सर्वथा अभाव हो जाए और उनका कुछ भी प्रभाव न रहे। महात्मा ईसा का कथन है कि जो मनुष्य मेरा शिष्य या अनुयायी होना चाहता है, उसे प्रति दिन स्वार्थ का त्याग

करना चाहिये। यदि तुम अपने स्वार्थ और वासनाओं को, पक्षपात और विचारो को त्याग देने के लिये तैयार हो तो तुम मुक्ति के तंग रास्ते में प्रवेश कर सकते हो और उस परमानन्द और शांति को प्राप्त कर सकते हो जो इस दुनियां में प्राप्त नहीं है। अपने आपको सर्वथा भुला देने और स्वार्थ और माया का पूर्णतया नाश कर देने का नाम ही उच्च कोटि का ब्रह्म-ज्ञान है और मुक्ति का मार्ग है। दुनियां में जितने भी मत मतान्तर है वे सब इसी अवस्था को प्राप्त करने के द्वार और साधन हैं।

जहाँ माया है वहाँ ब्रह्म नही और जहाँ ब्रह्म है वहाँ माया नही। जब तुम माया का नाश कर दोगे तो ब्रह्म में नए सिरे से जन्म लोगे और जब तुम माया से प्रेम करोगे तो ब्रह्म तुम से अदृश्य हो जायगा।

जब तक तुम माया में फँसे रहोगे तब तक तुम्हे अपने मार्ग में चहुँ ओर बाधाएं और कठिनाइयाँ ही दिखलाई देंगी और दु ख, शोक, संकट और निराशाएँ तुम्हें पग पग पर परेशान करेंगी, परन्तु इसके विपरीत ब्रह्म और मुक्ति के मार्ग में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नही है। ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके तुम सर्व प्रकार के दु खो और कष्टों से मुक्त हो जाओगे।

ब्रह्म स्वयं कोई अँधेरी या छिपी हुई वस्तु नही है। वह सदा प्रगट रहता है और बिलकुल स्वच्छ और निर्मल है, परन्तु माया अपने दुराग्रह और अन्धेपन के कारण उसे देख नहीं सकती। जैसे सूर्य का प्रकाश अन्धो के सिवाय और किसी से छिपा हुआ नही है, उसी प्रकार ब्रह्म का प्रकाश भी सबपर

प्रगट है और किसी से छिपा हुआ नहीं है, परन्तु जो लोग माया से अन्धे हो रहे हैं, वे उसको कदापि नहीं देख सकते।

इस दुनियां में ब्रह्म ही एक वास्तविक वस्तु है। इसी का नाम मानसिक सुख, पूर्ण ज्ञान और नित्य प्रेम है। इसमें न्यूनता वा अधिकता नहीं हो सकती। यह किसी एक मनुष्य पर निर्भर नहीं है, किन्तु समस्त मनुष्य इस पर निर्भर है। जव तुम स्वार्थ, माया और अज्ञानता के नेत्रों से देखते हो तो तुम्हें ब्रह्म का रूप, लावण्य दिखलाई नहीं दे सकता, जैसे यदि तुम स्वार्थी और अभिमानी हो तो प्रत्येक वस्तु पर तुम्हारे स्वार्थ और अभिमान का रंग चढ़ जाएगा। यदि तुम विपय-वासना में लिप्त रहते हो तो तुम्हारा मन और हृदय कपाय और वासना के धुएँ और चिंगारियों से इतना काला हो जाएगा कि उसके कारण प्रत्येक वस्तु वास्तविक रूप में दृष्टिगोचर होने के स्थान में भयंकर और कुरूप दिखलाई देगी। यदि तुम्हें अपनी वात का पक्ष है तो सर्वत्र तुम्हें अपने ही विचारों का महत्व दिखलाई देगा। तुम अपने विचारों के सामने किसी के विचारों की परवा नहीं करोगे।

एक गुण ऐसा है कि जिससे तुम ब्रह्मज्ञान में और माया जाल में फंसे हुए मनुष्य में स्पष्ट रूप से पहिचान कर सकते हो और वह गुण नम्रता है। केवल स्वार्थ, अभिमान और अहंकार से ही रहित नहीं होना, किंतु अपने को और अपने विचारों को तुच्छ समझना इसी का नाम वास्तव में नम्रता है

जो मनुष्य स्वार्थ और माया में डूबा रहता है वह केवल अपने ही विचारों को सच्चा समझता है और दूसरे के विचारों

को झूठा, परन्तु जो मनुष्य सच्चे दिल से ब्रह्म का इच्छुक है और जिसने सत्य और मिथ्या में भेद करना सीख लिया है वह समस्त मनुष्यों को प्रेम और उदारता की दृष्टि से देखता है और उनके विचारो के सामने अपने विचारो का पक्ष करना नही चाहता, किंतु अपने विचारो की इस कारण बलि दे देता है कि उसमें ईश्वरीय प्रेम की वृद्धि हो और उससे सत्य का प्रकाश हो, कारण कि सत्य स्वत. अकथनीय है। उसे हम केवल व्यवहार में ला सकते है। जिसमें सब से अधिक प्रेम और उदारता है उसी में सब से अधिक सत्य और ब्रह्म का प्रकाश है।

आज कल लोग बड़े बड़े शास्त्रार्थों में सम्मिलित होते हैं और मूर्खतावश यह विचार करते हैं कि हम सत्यके पक्षपाती हैं। वास्तव में वे स्वार्थवश अपने ही तुच्छ उद्देश्यों और अस्थिर विचारो की रक्षा करने के लिए लड़ रहे हैं। सत्य की वे रंचमात्र भी रक्षा नही कर रहे हैं। स्वार्थ और माया में फँसा हुआ मनुष्य ही दूसरे लोगो पर आक्रमण करता है और उसके दोष प्रगट करता है। जो मनुष्य सत्य का अनुयायी होता है और ब्रह्म में लीन रहता है, वह अपने ऊपर आप आक्रमण करता है अर्थात् निरतर अपने दोषो को ढूंढा करता है। सत्य या ब्रह्म नित्य और स्थायी है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता और इस कारण वह मेरी या तुम्हारी राय पर निर्भर नही है। हम या तो उसमें प्रवेश कर सकते हैं वा उसके बाहर ठहर सकते है अर्थात् या तो हम सत्य और ब्रह्म को स्वीकार कर सकते है या उससे इन्कार कर सकते हैं, परतु हमारी स्वीकारिता या अस्वीकारिता दोनो व्यर्थ है, कारण कि उनका उलटा असर हम पर ही पड़ता है। जो लोग स्वार्थी, क्रोधी और अभिमानी है और

दूसरो को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और अपनी इन्द्रियों के दास बने हुए हैं, वे केवल अपने ही धर्म और विचारोंको सच्चा समझते हैं और अन्य सबको झूठा और जहां तक उनसे बन पडता है, वे लोगों को अपने ही धर्मका अनुयायी बनातेहैं, परंतु यह उनकी भूल है वास्तव में केवल एक ही धर्म है और वह धर्म सत्य है। इसी प्रकार केवल एक ही अधर्म या पापहै और वह स्वार्थ और मायाहै। सत्य कोई बनावटी या नुमायशी धर्म नहीं है। वह ऐसा धर्म है कि इसमें मनुष्य का हृदय निस्वार्थ और पवित्र होता है और उन्नति करने की आकांक्षा रखता है। जिस मनुष्य में यह धर्म पाया जाता है अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुयायी होता है वह सब से भ्रातृभाव रखता है और प्राणी मात्र का शुभचिंतक होता है।

यदि तुम चुपकेसे अपने मन, हृदय और चरित्र की परीक्षा करो तो तुम्हे आसानी से यह ज्ञात हो जाएगा कि हम सत्यके अनुयायी हैं या मिथ्या के, ब्रह्म के या माया के तुम्हारे मन में ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध लोभ और मान के विचार हैं या तुम दृढतासे उनका सामना कर रहेहो और तन मनसे उनकी जड काटनेका उद्योग कर रहेहो। पहली दशामें चाहे तुम्हारा कोई भी धर्म हो, तुम अवश्य मिथ्या और मायाके अनुयायीहो परन्तु दूसरी दशामें चाहे तुम्हारा देखनेमें कोई भी धर्म न हो, तब भी तुम सत्य और ब्रह्म के पक्षपाती हो। क्या तुम क्रोधी और अभिमानी हो सदा अपने ही स्वार्थ की चिंता रखतेहो, अपनी इन्द्रियोंके दास बने रहतेहो और मायामें लिप्तहो अथवा सभ्य शांत और सुशील हो, परोपकारी और निःस्वार्थी हो, इन्द्रिय-निग्रह करने और स्वार्थ की आहुति देने के लिए सदैव तैयार

रहते हो। पहली दशा में तुम माया के वशीभूत हो, परन्तु दूसरी दशा में ब्रह्म के प्रेमी हो। यदि तुम धन सम्पदा के इच्छुक हो, अपने शत्रु से बड़े जोश के साथ लड़ते हो, तुम्हें बल और प्रभुत्व की इच्छा है और बनावट और दिखलावे की आदत है, तो चाहे तुम अपने जी में यह समझते रहो कि हम ईश्वर के भक्त हैं और ईश्वर की ही उपासना करते हैं परन्तु वास्तव में तुम माया के जाल में फंसे हुए हो और माया के ही उपासक हो। इसके विपरीत यदि तुमने धन सम्पदा की इच्छा छोड़ दी है, किसी प्रकार के लड़ाई झगड़ोंसे कोई संबंध नहीं रक्खा है, नाम, प्रतिष्ठा पाने की भी तुम्हें इच्छा नहीं रही है और तुमने अपनी प्रशंसा करना अथवा अपना जिकर करना भी छोड़ दिया है तो चाहे तुम अपनी जिह्वासे ईश्वर-उपासना न भी करते हो, तो भी ईश्वर के भक्त हो और ईश्वर तुम्हारे निकट है।

जिन बातों से ईश्वर का भक्त पहिचाना जाता है उनमें कभी भूल नहीं होती। देखो कृष्ण भगवान ने भगवद्गीता में उन्हीं बातों का इस प्रकार उल्लेख किया है.—

अभयं सत्व संशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥

अर्थात् शुद्ध सात्विक वृत्ति, ज्ञान और योगकी तारतम्य से व्यवस्था, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय अर्थात् स्वधर्म के अनुसार आचरण, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, कर्म-फल का त्याग, शांति, अपैशुन्य अर्थात् क्षुद्रदृष्टि छोड कर उदार भाव रखना, सब प्राणियो में दया, तृष्णा न रखना, मृदुता, लाज, अचपलता अर्थात् फिजूल कामो का छूट जाना, तेजस्विता, क्षमा,, धृति, शुद्धता, द्रोह न करना, अतिमान न रखना, हे भारत! ये गुण दैवी सम्पत्ति में जन्मे हुए पुरुषो को प्राप्त होते हैं।

जब से मनुष्य अज्ञान और माया के टेढे रास्तो में भटककर सत्य और ब्रह्म को भूल गए हैं, तभी से उन्होंने एक दूसरे की जॉच करने के लिए कृत्रिम चिह्न नियत किए है। वे अपने ही धार्मिक सिद्धांतो को मानते हैं और उन्हीं के अनुसार चलने को सत्य की कसौटी समझते है अर्थात् जो कोई उन सिद्धांतो के अनुकूल चलता है उसे सच्चा और सम्यक्ती समझते हैं और जो कोई उन सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं चलता, उसे मिथ्यात्वी समझते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि लोग एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं और उनमें परस्पर में फूट पड़ जाती है और इस दशा में निरन्तर वैर विरोध और शोक और दुःख रहता है।

पाठकगण, यदि तुम ब्रह्म और सत्य को प्राप्त करना चाहते हो तो उसका केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि स्वार्थ और माया को त्याग दो। अब तक तुम जिन इच्छाओं, वासनाओं, लालसाओं, भावो और विचारो में लिप्त हो, उन सबका एक दम त्याग कर दो। अब से कभी उनके आधीन

मत बनो। ऐसा करने से तुम ब्रह्म को प्राप्त कर लोगे। इस विचार को अपने मन से सर्वथा निकाल डालो कि केवल तुम्हारा ही धर्म अन्य सब धर्मों से उत्तम है। सब धर्मों को उच्च और उत्तम समझो। सब में सचाई मौजूद है। नम्रता के साथ दया और उदारता का पाठ सीखो। इस विचार को क्षण भर के लिए भी अपने मन में स्थान मत दो कि जिस देवता की तुम पूजा उपासना करते हो केवल वही एक मुक्तिदाता है और जिस देवता की तुम्हारा भाई तुम्हारे समान सच्चे दिल से उपासना करता है, वह झूठा है। यह विचार लड़ाई और झगडे का कारण है। तुम्हें तो श्रम और उत्साह से मुक्तिमार्ग को ढूँढना चाहिए। उसी समय तुम्हें यह ज्ञात होगा कि प्रत्येक धर्मात्मा पुरुष मनुष्य जाति का उद्धारक और मुक्तिदाता है।

स्वार्थ और माया के त्याग करने से यह तात्पर्य नहीं है कि केवल बाह्य वस्तुओं को त्याग दिया जाए किंतु अन्तरंग पाप और अज्ञानता का त्याग करना चाहिए। केवल बढ़िया नुमायशी कपड़ों के त्याग करने से धन, सम्पदा के छोड़ देने से अथवा स्वादिष्ट पदार्थों के सेवन न करने से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। ब्रह्म की प्राप्ति इस प्रकार होती है कि अपने मन से स्वार्थ का मैल बिलकुल निकाल दिया जाए, धन दौलत की इच्छा पैदा ही न हो, इन्द्रिय-जन्य सुखों से घृणा हो जाए और ईर्ष्या द्वेष, स्वार्थ और मान का नाश हो जाए और उनके स्थान में प्रेम, सभ्यता, परोपकार और नम्रता का प्रकाश हो जाए। चाहे तुम इस दुनिया को छोड कर अकेले किसी निर्जन वन में अथवा किसी पहाड की कंदरा में जाकर बैठ जाओ तो भी तुम स्वार्थ को अपने साथ लेजा सकते हो, और जब तक तुम

इस स्वार्थको न छोड़ोगे तब तक तुम और भी अधिक विपत्ति में फसोगे। अतएव तुम जहां भी कही हो, वहीं पर रहो, अपने कर्त्तव्यो का पालन किए जाओ और अपने भीतरी शत्रु अर्थात दुनिया के झगड़ों को छोड़ दो। सबसे बढ़कर बात यह है कि दुनिया में रहते हुए दुनियां के न बनो। जिस प्रकार कमलका फूल पानी में रहता हुआ भी पानी से अलग है उसी प्रकार तुम दुनिया में रहते हुए भी दुनिया से अलग रहो। इसी का नाम उच्च-कोटि की शांति है और यही सब से बडी विजय है। स्वार्थ और माया का त्याग करना ही सत्य और ब्रह्म का मार्ग है। अतएव माया को त्याग कर ब्रह्म में लीन हो जाओ। ईर्ष्या और द्वेषसे बढ़कर कोई शोक नहीं है। विषय-वासनासे बढ़ कर कोई दु ख नहीं है और इन्द्रियो से बढ़ कर कोई धोके की चीज नहीं है। जो मनुष्य इन में से किसी एक को भी अपने पैरों तले रौंद डालता है वह मानों ब्रह्म मार्ग में बहुत दूर चला गया है।

ज्यों ज्यो तुम माया को अपने वश में करते जाओगे, त्यों त्यों तुम्हें वस्तुओ के वास्तविक सम्बन्धका ज्ञान होता जाएगा जो मनुष्य किसी इच्छा या वासना के वश में होता है और जिसे किसी वस्तु से प्रेम और किसी वस्तु से घृणा होती है, वह प्रत्येक वस्तुका उसी इच्छा और वासनासे अनुमान करता है, परन्तु इसके विपरीत जो मनुष्य इच्छाऔर वासनासे रहित है और जिस मे पक्षपात का लेश नही है, वह अपने आपको और दूसरों को वास्तविक रूप में देखता है। न वह किसीपर आक्रमण करता है, न किसी की सहायता करता है, न कुछ छिपाता है और न कोई उसका स्वार्थ होता है। इसी लिए वह

शांति की अवस्था में होता है। उसने उच्च कोटिका ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, कारण कि मन और हृदय की शांति, पवित्र और निष्पक्ष अवस्था ही ब्रह्म की अवस्था है जो मनुष्य इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है वह देवताओं के समूह में प्रवेश करता है और ईश्वर-दर्शन करता है। जिस मनुष्य को ईश्वरी नियम का ज्ञान है, शोक और दुःख का वास्तविक कारण ज्ञात है और जो यह जानता है कि ब्रह्म के कारण ही मुक्ति मिल सकती है, वह लडाई झगड़े में अथवा बुराई में शामिल नही हो सकता। कारण कि यद्यपि वह यह जानता है कि अंधी और स्वार्थी दुनियां जो अपने ही धोको के बादलों से घिरी हुई है और माया और अज्ञान के अन्धकार में डूबी हुई है, ब्रह्म के स्थायी प्रकाश को नहीं देख सकती और जिस मनुष्य ने कि प्राण दे दिये है अथवा जो प्राण दे रहा है, स्वार्थ के सामने उसके दिल की सफाई और सादगी को नहीं समझ सकती, तथापि वह यह भी जानताहै कि जब दुःख और विपत्ति में ग्रसित लोगों ने प्रत्येक युग में शोक और दुःख के पहाड़ पर पहाड़ खड़े कर दिये है, तो दुनिया की दबी हुई और कुचली हुई आत्मा अपने अंतिम स्थान की ओर दौड़ कर भागेगी और जब काल और युग समाप्त हो जाएँगे तो प्रत्येक अज्ञानी और मायावी मनुष्य फिर सत्य-मार्ग की ओर लौट आएगा। इस प्रकार वह सब का भला चाहताहै और सबको उसी प्रेम-दृष्टि से देखता है जिससे कि कोई पिता अपने बच्चों को देखता है।

मनुष्य ब्रह्म को इस कारण नहीं समझ सकते कि वे माया में फंसे हुए है। माया ही उनका धर्म है, माया ही में वे लिप्त हैं

और माया ही को वे सत्य समझते हैं,यद्यपि वह सर्वथा मिथ्या है। जब तुम माया पर विश्वास करना और उनसे प्रेम करना छोड़ दोगे, तो तुम उसे त्याग दोगे और नित्य ब्रह्म की ओर प्रवृत्ति करोगे।

जब मनुष्य विषय-वासना, स्वार्थ और अभिमान का मदिरा पीकर बेहोश होजातेहैं तो उनमें जीने की इच्छा बढ़ती और गहरी होती जाती है और उनके मन में यह झूठा और व्यर्थ का विचार पैदा हो जाता है कि यह शरीर नित्य और अविनाशी है, परन्तु जब वे अपने बोए की फसल काटने लगते हैं अर्थात् अपने अशुभ कर्मों का फल भोगते हैं और उनका दु ख और दर्द बढ़ता हैं, तो उस समय वे चकनाचूर होकर स्वार्थ और उसका सारा नशा भूल जातेहैं और दुःखमय हृदय से उस अविनाशी अवस्था की ओर प्रवृत्ति करते हैं कि जिस से सम्पूर्ण भ्रम दूर हो जाते हैं।

लोग बुराई से भलाई की ओर और माया से ब्रह्मकी ओर दुःख और शोक के अँधेरे द्वार में से होकर आते हैं कारण कि शोक और मायाका अविनाभावी सम्बन्ध है। केवल ब्रह्मकीही शांत और आनन्द मय अवस्थामें सर्व प्रकार का शोक दूर हो जाता है। यदि तुम्हें इस बात की निराशा है कि तुम्हारे इरादे पूरे नहीं हुए, अथवा अमुक व्यक्ति ने तुम्हारी आशाओं के अनुसार कार्य नहीं किया,अर्थात तुम्हें उससे बहुत कुछ आशाएँथीं, परन्तु वह किसी कामका नहीं निकला,तो इसका कारण यहहै कि तुम स्वार्थ और माया में फंसे हुए हो। यदि तुम्हें अपने दुश्चरित्र का पश्चात्ताप है,तो इसका भी कारण यहहै कि तुम

माया के वश में हो। यदि तुम किसी मनुष्य के कारण दुःखित और चिंतित रहते हो तो इसी लिए कि तुम मायाके भक्त और उपासक हो। जो कुछ तुम्हारे साथ किया गया है अथवा जो कुछ तुम्हारे विषय में कहा गया है यदि उससे तुम्हें दुःख हुआ है अथवा तुम्हारा अपमान हुआ है तो इसी लिए कि तुम माया के दु ख मय मार्ग पर चल रहे हो। समस्त दु खों का आदि कारण माया है और समस्त दु खों का अंत ब्रह्म है। जब तुमने ब्रह्म-मार्ग में प्रविष्ट होकर उसे भली भांति जान लिया है तो तुम्हें कदापि शोक, संताप, निराशा और पश्चात्ताप का दुःख नहीं उठाना पड़ेगा।

माया ही एक ऐसा बन्दीगृह है जो आत्मा को सदा बंधन में रख सकता है और ब्रह्महो एक ऐसा शक्ति शाली देव हैकि जो बंद दरवाजोंको खुलने का हुक्म दे सकताहै। अतएव जब उक्त देव तुझे बुलाने के लिए आए तो तू शीघ्र उठकर उसके पीछे हो ले। चाहे वह अंधेरे में होकर जाए, परन्तु अंत में तुझे प्रकाश में ले जाएगा।

दुनिया का दु.ख दुनियां का ही पैदा किया हुआ अथवा मोल लिया हुआ है। शोक और दु.ख आत्मा को पवित्र बना देते है और उसे अधिक बुद्धिमान कर देते है और जहां दु.ख का अन्त होता है वहीं सुख का आरम्भ होता है।

क्या तुमने बहुत कष्ट उठायाहै और बहुत कुछ दुःख सहन किया है? क्या तुमने जीवनके महत्वपूर्ण प्रश्नों पर बहुत कुछ विचार किया है? यदि वास्तव में ऐसा किया है. तो तुम इस

योग्य हो कि माया के विरुद्ध युद्ध करो और ब्रह्म के अनुयायी बनो।

जो लोग अपने को बडे बुद्धिमान समझते हैं और मायाको छोडने की आवश्यक्ता नहीं देखते वे इस दुनिया के विषय में नाना प्रकार के अनुमान कर लेतेहैं और उन्हींको सत्य सिद्धांत समझ बैठते हैं,परन्तु तुम्हें उसी मार्ग पर चलना उचित है जो नीति और सच्चरित्रता पर निर्भर है। ऐसा करने से तुम्हें उस ब्रह्म की प्राप्ति होगी जिसका अनुमान से कोई सम्बध नहीं और जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। अपने हृदय रूपी खेत को बोओ और उसे निःस्वार्थ प्रेम और अपरिमित दया के जलसे निरन्तर सींचते रहो और जिन विचारों और भावों का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं उनको हृदय से निकाल बाहर करो। यदि कोई तुम्हारे साथ बुराई करे तो तुम उसके साथ भलाई करो। यदि कोइ तुमसे द्वेष और घृणा करे, तो तुम उसके साथ प्रेम और मित्रता का व्यवहार करो और यदि कोई तुम पर वार करे तो तुम चुप रहो। ऐसा करने से तुम अपनी समस्त स्वार्थ-युक्त वासनाओं को विशुद्ध प्रेमके रूप में परिवर्तित कर लोगे और ब्रह्म के आगे माया कपूरवत उड़ जायगी। इस प्रकार तुम निर्दोष होकर नम्रता के नरम जुवे में जुतकर और दीनता के पवित्र वस्त्रों से सुसज्जित होकर लोगों के बीच में चल फिर सकोगे। सच कहा है कि शत्रु को तेज लोहे की तलवार से नहीं, किंतु गुड से मारना चाहिए।

---

२ आध्यात्मिक वल की प्राप्ति ।

इस दुनिया मे ऐसे स्त्री पुरुष हुए है कि जो हर्ष स्फूर्ति और नवीनता के अभिलाषी है और सदा इस वात के इच्छुक रहते है कि या तो खिल खिला कर हंसें या फूट फूट कर रोयें, जो वल, दृढता और स्थिरता को नही चाहते, किंतु निर्वलता को चाहते हैं और जो कुछ वल या शक्ति उन में मौजूद है उसके नष्ट करने की चिंता में रहते हैं।

वास्तविक शक्ति और प्रभाव वाले मनुष्य वहुत कम हैं कारण कि वहुत ही कम लोग ऐसे है कि जो इस वात के लिए तैयार है कि शक्ति की प्राप्ति के लिये जिस वल और आहुति की आवश्यक्ता है उसे दे सकें और उनसे भी कम ऐसे लोग है कि जो धैर्य और शांति के साथ अपने चरित्र का संगठन कर सकें।

अपने चंचल विचारो और अस्थिर भावो के वश में होना और उनके अनुसार प्रवृत्ति करना निर्वल और साहसहीन होना है, परंतु उन्ही को अपने वश में रखना और उन्हें सद् मार्ग पर लगाना प्रवल और साहसी होना है।

जिन लोगो में पाशविक वासनाएँ अधिक होती हैं उनमें पशुओं जैसी भीषणता भी अधिक होती है, परन्तु उसका नाम वास्तव में शक्ति नही है। निःसंदेह उसमें शक्ति के तत्व हैं, परन्तु वास्तविक शक्ति का उसी समय आरम्भ होता है कि जब उस भीषणता को विवेक और बुद्धि से दमन किया जाए और बल की प्राप्ति उसी समय हो सकती है कि जब मनुष्य अपने में ज्ञान और विवेक की उच्चतर अवस्था को पैदा करले।

निर्बल और प्रबल मनुष्य में अन्तर यह नहीं है कि एक मनुष्य की विचारशक्ति दूसरे की विचारशक्ति से बढ़ी हुई है, किन्तु यह है कि एक मनुष्य की विवेकशक्ति दूसरे की विवेक-शक्ति से अधिक है और उसी से उनकी ज्ञानावस्था का पता लगता है।

इन्द्रिय सुख के अभिलाषियों, स्फूर्ति के इच्छुकों, नवीनता के प्रेमियों और विषय-वासना के लोलुपियों को सिद्धान्तों का वह ज्ञान नहीं हो सकता जिससे बल और दृढता उत्पन्न हो और प्रभाव बढ़े।

जो मनुष्य अपनी कषायों और स्वार्थयुक्त इच्छाओं को रोक कर अपनी आत्मा का चिन्तवन करता है और अपने को किसी सिद्धांत पर स्थिर करता है, वही प्रबल और शक्तिशाली होने लगता है।

आत्मोन्नति के उद्योगियों को जब इस बात का अनुभव होने लगता है कि सिद्धांत अटल है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, तभी से वे शक्ति प्राप्त करने लगते हैं।

जब बहुत कुछ ढूँढने, खोजने, कष्ट और दुःख उठाने के बाद ईश्वरीय सिद्धांत का प्रकाश आत्मा पर चमकने लगता है अर्थात् आत्मा में परमात्मावस्था का अनुभव होने लगता है तो उस समय मनुष्य को शान्ति और परम सुख की प्राप्ति हो जाती है।

जिस मनुष्य को ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है, जो ईश्वरीय सिद्धान्तों का अनुभव करने लगता है, वह इधर उधर मारा मारा भटकता नही फिरता, किंतु शांत और गम्भीर रहता है। वह कषायों और वासनाओं का दास नहीं रहता और अपने भाग्यरूपी मंदिर का निर्माता बन जाता है।

जो मनुष्य स्वार्थ और माया के वश में है और किसी सिद्धांत पर दृढ़ नहीं है, उसके जब कभी स्वार्थ और भोग विलास में कमी आती है तो वह झट अपने को बदल देता है। उसे केवल अपने ही स्वार्थ और लाभ की रक्षा करना अभीष्ट है, इस कारण वह उन सब साधनों को उचित समझता है जिनसे उसकी स्वार्थ-साधना होती है। वह निरंतर यह सोचता रहता है कि किस प्रकार अपने शत्रुओं से सुरक्षित रहूँ और वह स्वार्थ में इतना लीन होता है कि यह भी नहीं जान सकता कि वास्तव में मैं स्वयं अपना शत्रु हूँ। ऐसे मनुष्य की कदापि कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती कारण कि वह सत्य और बल से रहित होता है। स्वार्थयुक्त होकर जो भी काम किया जाता है, वह कदापि सफलीभूत नहीं होता। निश्चय से उसका नाश हो जाता है। केवल उसी कार्य में स्थिरता होती है जो नित्य और अविनाशी सिद्धान्त पर निर्भर होता है।

जो मनुष्य किसी एक निश्चित उद्देश्य पर जमा रहता है वह प्रत्येक अवस्था में शांत, गंभीर और निर्भीक रहता है। जब परीक्षा का समय आता है और उसे स्वार्थ और सत्य में निर्णय करना होता हैं तो वह स्वार्थ को तिलांजलि दे देता है और सत्य पर दृढ रहता हैं। और तो क्या विपत्ति और मृत्युसे भी उसे भय नहीं होता। वह अपने प्राण तक दे देने को तैयार हो जाता है, परन्तु सत्य से विचलित नही होता। स्वार्थ और माया में जो लोग फंसे हुए हैं वे सांसारिक धन सम्पदा और शारीरिक दुःख वेदना को बड़ी भारी विपत्ति समझते है,परन्तु जो लोग किसी नियम और सिद्धान्त पर चलतेहै वे सत्य और सिद्धान्तके सामने उनकी कुछभी परवाह नहीं करते। सत्य वा सिद्धान्त के हाथ से चले जाने से जो हानि होती है उसके सामने वे शारीरिक दु:खों और सांसारिक धन सम्पदा को कुछ भी नहीं समझते। उनके निकट सत्य और ब्रह्मसे बढकर कोई वस्तु नहीं है। उनके विचार में सत्य का त्याग देना ही एक ऐसी बात है जिसको वास्तव में दु.ख और विपत्ति कह सकते हैं।

अड़ी भीड़ या विपत्ति के समय ही इस बात का निश्चय किया जा सकता है कि किन मनुष्यों को अन्धकार पसद है और किन को प्रकाश की इच्छा है। दुख,विपत्ति और विनाश के समय में ही इस बात का पता लगता है कि पुरुष कौनसे है और नपुंसक कौन से और भावी सन्तान प्रति संतान को यह ज्ञात हो जाता है कि किन मनुष्यों में बल है और कौन निर्बल है।

जब तक किसी मनुष्य को सर्व प्रकार के सुख प्राप्त हैं और किसी बात की कमी नही है तब तक उसके लिए इस बातका विश्वास कर लेना आसान है कि मै शांति-प्रिय हूँ और प्रेम, ऐक्य और सर्वेषु मैत्री के सिद्धांतों का अनुयाई हू, परन्तु जब उसके रग में भग पड़ जाए या उसे इस बात का भय हो जाए कि मुझसे मेरे सुखके सामान छिन जाएँगे तो वह बड़े ज़ोर से वैर विरोध करने के लिए चिल्लाने लगता है और उस समय अपनी क्रियाओ से यह सिद्ध कर देताहै कि न उसे शांति,प्रेम और ऐक्य के सिद्धांतो पर विश्वास है और न वह उनका अनुयाई है, किन्तु वैर विरोध, स्वार्थ और द्वेष का अनुयाई है और उन्हीं को वह सब कुछ समझता है।

यदि किसी मनुष्य की प्रत्येक सांसारिक वस्तु जाती रहे यहां तक कि उसका यश और जीवन भी जाता रहे और फिर भी वह अपने उद्देश्य पर दृढ़ता से जमा रहे तो उस मनुष्यको बलवान समझना चाहिए। उसके प्रत्येक शब्द और कार्य में स्थिरता है और उसके मरने के बाद दुनिया उसका आदर सत्कार करतीहै और उसका यश गान करतीहै। देखो महात्मा ईसा परम-ब्रह्म परमात्मा की भक्ति में लीनथे। उन्हे ईश्वरपर पूर्ण और अटल विश्वास था। उन्हो ने कितने शारीरिक कष्ट सहन किए, कितने दु:ख उठाए कितनी विपत्तियां झेली, परन्तु वे अपने सिद्धांत पर अटल जमे रहे। उसी का यह प्रभाव है कि आज संसार में करोड़ो ईसाई उनके भक्त और उपासक है और उनको अपना तरण तारण और मुक्तिदाता समझते हैं। आध्यात्मिक शक्ति के प्राप्त करने को उस अंतरंग प्रकाश और ज्ञानके सिवाए जिसका अभिप्राय आत्मिक सिद्धांतोका अनुभव

करना है, और कोई उपाय नहीं है और वे सिद्धान्त निरंतर अभ्यास करने से ही समझ में आ सकते हैं।

उदाहरण के लिए ईश्वरीय प्रेम का सिद्धान्त लो। उसको भली भाँति समझने के लिये उस पर एकाग्रचित्त होकर श्रम-पूर्वक विचार करो और अपनी सम्पूर्ण आदतों, अपनी इच्छाओं, अपने विचारों, अपने शब्दों और अपने कार्यों में इस सिद्धान्त के विस्तरित प्रकाश से काम लो। जितना अधिक तुम इस विषय में दृढ़ रहोगे उतना ही अधिक स्पष्ट रूप से ईश्वरीय प्रेम तुम में विकसत हो जाएगा और तुम्हारे अवगुण और तुम्हारी त्रुटियां तुम्हारे सामने स्पष्टतया और स्वच्छतया प्रगट होने लगेंगी और तुम्हें नवीन उद्योग करने के लिए उत्साहित और उत्तजित करती रहेंगी। एक वार भी यदि तुम इस नित्य और अविनाशी सिद्धान्त के अलौकिक महत्व और विभव के प्रकाश की झलक पा जाओगे, तो फिर कभी तुम स्वार्थपरता, निर्बलता और अपूर्णता की ओर प्रवृत्ति न करोगे, यहाँ तक कि तुम सर्व प्रकार के विरोधी भावो को त्याग कर प्रेम में तन्मय हो जाओगे और उसके साथ पूर्ण रूप से एकमेक हो जाओगे इसी अंतरग समता और एकमेकता का नाम आत्मिक बल है इसी प्रकार दया, पवित्रता आदि अन्य आत्मिक सिद्धान्तों को लो और उनको भी इसी प्रकार उपयोग में लाओ। सत्य वा ब्रह्म की यह शक्ति ऐसी प्रवल है कि तुम बीच में कहीं भी नहीं ठहर सकते और न कहीं आराम कर सकोगे, यहाँ तक कि तुम्हारी आत्मा के भीतरी वस्त्र पर से सर्व प्रकार के दाग़ और धब्बे जाते रहेंगे और तुम्हारे हृदय में भी कभी किसी प्रकार का कड़ा, कठोर, और विरोध भाव न आने पाएगा।

जितना तुम इन सिद्धांतो को समझोगे, इनकी असलियत को जानोगे और इन पर विश्वास करोगे उतना ही तुम मे आध्यात्मिक बल आएगा और वह बल शांति, धैर्य, संतोष, सहन शीलता और समता के रूपमें तुम्हारे भीतर और तुम्हारे द्वारा प्रगट होगा।

शांति और धैर्य से इच्छाओ का निरोध और इन्द्रियो का दमन होता है। संतोष और सहन शीलता ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के चिन्ह हैं और समताभाव अर्थात् जीवन की चिंताओ और कठिनाइओ में चित्त को चिंतित न करना और प्रत्येक दशा में साम्यभाव रखना, इससे बलवान मनुष्य का पता लगता है।

दुनिया में दुनिया का सा होकर रहना अर्थात दुनिया के लोगों के विचारानुसार जीवन व्यतीत करना आसान है, एकांत में अपने जैसा होकर रहना अर्थात अपने विचारानुसार जीवन व्यतीत करना कठिन है, परन्तु महापुरुष वही है जो दुनिया के लोगोंमें रहता हुआ प्रसन्नतापूर्वक एकांत के सुखका अनुभव करता है और एकांत की स्वाधीनता को सुरक्षित रखता है।

कुछ ब्रह्मवादियो का कथनहै कि इच्छाओके निरोध करने में सफलता प्राप्त करनेसे उस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है कि जिसके द्वारा बड़े बड़े आश्चर्यमय कार्य किएजासकतेहै। वास्तव में जिस मनुष्य को अपनी अतरग शक्तियो पर ऐसा अधिकार हो गयाहै अर्थात् जिसने अपने आपको इतना अपने वश में

कर लिया है कि बड़े से बड़ा धक्का एक क्षण के लिए भी उसे अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकता अर्थात् चाहे उस पर कैसी ही भारी से भारी विपत्ति आए तो भी वह अटल और अचल बना रहेगा, वही मनुष्य उन शक्तियों को सन्मार्ग पर लगा सकता है और उनसे काम ले सकता है।

जितना तुम धैर्य और सन्तोष करोगे, इंद्रियों का निग्रह और इच्छाओं का निरोध करोगे उतना ही तुम्हारा बल और साहस बढ़ेगा। अपने ज्ञान को एक सिद्धांत पर लगाने से ही तुम उन्नति कर सकोगे। जिस प्रकार बच्चा बिना सहारे चलनेके लिए बहुत कुछ श्रम और उद्योग करने पर और अनेक बार गिर पड कर अंत में चलना सीख लेता है उसी प्रकार यह आवश्यक है कि तुम भी पहले अकेले रहने का उद्योग करके शक्ति के मार्ग में प्रवेश करो। रीति रिवाजो की परवा मत करो। लकीर के फकीर न बने रहो। दूसरे क्या कहते है, इसकी भी कोई चिंता मत करो। तुम केवल लोगो के बीच में अकेले और सीधे खड़ा होना सीखलो। यही तुम्हारा उद्देश्य होना चाहिए, इसी पर तुम अटल जमे रहो। अपनी राय पर विश्वास करो, अपनी अंतरात्मा के आदेशानुसार प्रवृत्ति करो। जो ज्ञान और प्रकाश तुम्हारे भीतर है उसीसे प्रकाशित होओ। बाह्य मे जो प्रकाश दृष्टिगोचर होता है, वह एक प्रकार का छलावा है। उस पर मोहित न होओ। ऐसे मनुष्य भी है जो तुम से यह कहेंगे कि तुम मूर्ख हो, तुम्हारे विचार मिथ्या हैं तुम्हारी बुद्धि भ्रम में है, तुम में विवेक नहीं है, तुम्हारे अंतरंग में जो प्रकाश है वह एक प्रकार का अंधकार है, परन्तु तुम उन लोगों के कहने की कोई परवा मत करो। यदि जो कुछ वे कहते हैं

यह सच है तो तुम अपनी बुद्धि से ढूंढ कर जितनी जल्दी मालूम कर सको, उतना ही अच्छा है और यह खोज उसी समय हो सकती है कि जब तुम अपनी शक्तियों की जांच करो अतएव, वीरता से अपने मार्ग का अवलम्बन करो। कमसे कम इतना तो अवश्य है कि तुम्हारी अन्तरात्मा तुम्हारी ही है। उसका अनुकरण करना मनुष्य होते हुए तुम्हारा कर्त्तव्य है। दूसरे मनुष्य की अन्तरात्मा के अनुकूल प्रवृत्ति करना दास बनना है। तुम्हें अनेक वार परारत होना पड़ेगा, तुम्हें कष्टों को सहन करना पड़ेगा, परंतु तुम अपने श्रद्धान पर अटल जमे रहो और आगे बढ़े चलो और इस बात का विश्वास रक्खो कि पूर्ण और निश्चित विजय आगे ही चल कर है। किसी एक सिद्धांत पर दृढता से जम जाओ। चाहे कुछ भी हो, परतु उससे विचलित न होओ। जब तुम में इतना वल आ जाएगा तो फिर तुम्हें स्वार्थ और वासना की लहरें न बहा सकेंगी।

स्वार्थपरता में चाहे वह किसी प्रकार की हो अस्थिरता दुर्बलता और मृत्यु है और आध्यात्मिक निःस्वार्थता में स्थिरता प्रवलता और जीवन है। ज्यो ज्यो तुम आत्मिक उन्नति करोगे और सिद्धांतो पर स्थिर रहोगे त्यो त्यों तुम उन सिद्धांतो के अनुसार सुंदर और अजर अमर बन जाओगे और अपनी आत्मा में परमात्मा का अनुभव करने लगोगे।

---

४. ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति।



इकेल एंजिलो जब किसी पत्थर के खुरदरे टुकड़े को देखता था तो कहा करता था कि इसके भीतर एक बड़ी सुन्दर रमणीक मूर्ति छिपी हुई है जिसके प्रगट करने के लिये किसी चतुर शिल्पकार के हाथ की ज़रूरत है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्वर की सुन्दर, मनोज्ञ और अनुपम मूर्ति विद्यमान है और उस-के प्रगट होने के लिए श्रद्धान रूपी हाथ और धैर्य और सन्तोषरूपी छेनी की आवश्यकता है और वह मूर्ति विशुद्ध, निर्दोष और निःस्वार्थ प्रेम के रूप में प्रगट होती है और उसी रूप में उसका भली भांति ज्ञान और अनुभव किया जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय प्रेम गुप्त और अव्यक्त रूप से छिपा हुआ है और उसका पवित्र और निर्दोष तत्त्व नित्य और स्थाई है। यद्यपि इस ईश्वरीय प्रेम के ऊपर और इसके चहुँओर बहुत सी ऐसी कड़ी, कठोर, अगम और अभेद्य वस्तुएँ जमा रहती हैं कि जिनके कारण मनुष्य उसकी तह तक कठि-नता से पहुँच सकता है, परन्तु मनुष्य में यही तत्त्व है। इसी का

नाम ब्रह्म है। इसी का ईश्वर से सम्बन्ध है। यही वास्तविक है और सब कालपनिक हैं। यही अजर अमर है और सब विनाशीक है। यही नित्य और स्थाई और सब अनित्य और अस्थाई है। निरन्तर श्रम करके और सम्यक् चारित्र धारण करके इस प्रेम का ज्ञान और अनुभव करने से और इसमें तन्मय हो जाने से मनुष्य यही और इसी समय मोक्ष में प्रवेश कर सकता है। अपने स्वाभाविक गुणो, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, और अनन्त वीर्य को प्राप्त कर सकता है और परम ब्रह्म परमात्मा में लीन हो सकता है। उसमें और परमात्मा में कोई भेद नहीं रह सकता। एकमेक हो सकता है। दूसरे शब्दो में वह साक्षात् परमात्मा बन सकता है। इस ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त करने, इसके समझने और अनुभव करने के लिए मनुष्य को अपने मन और हृदय पर बड़े श्रम और उत्साह से काम करना आवश्यक है। उसे निरन्तर नवीन साहस से काम करना और अपने विश्वास को दृढ रखना चाहिए कारण कि परम ब्रह्म परमात्मा की सुंदर अनुपम और शांतिमय छवि के दर्शन होने से पहले उसे अनेक अवगुणो को दूर करना और अनेक गुणो को प्राप्त करना होगा।

जो मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करना और ईश्वर के निकट पहुंचना चाहता है, उसकी भली भांति परीक्षा की जायगी। उसे अनेक कष्टो को सहन करना और अनेक परिषहो को जय करना होगा। इनके बिना उसे धैर्य और दृढ़ता का अभ्यास न होगा और जब तक धैर्य और दृढ़ता का मनुष्य को अभ्यास न होगा, तब तक वह मुक्ति के मार्गसे कोसों दूर रहेगा। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ेगा और उन्नति करेगा त्यो त्यों उसे इस बात का अनुभव होगा कि मेरा सब उद्योग व्यर्थ और निष्फल गया। उसने

अपने हृदय तट पर जो चित्र अंकित कर रक्खा है कभी कभी उतावली करने से वह विगड़ जाएगा और सम्भव है कि जब वह समझता हो कि अब मेरा काम पूरा हो गया तो उसे अकस्मात यह ज्ञात हो कि जिस वस्तु को मैं ईश्वरीय प्रेम की सुन्दर मनोज्ञ प्रतिमा समझता था वह बिलकुल नष्ट हो गई है और अब मुझे फिर नए सिरे से अपने पिछले कडुवे अनुभव की सहायता से उद्योग करना आवश्यक है। परन्तु जिस मनुष्य ने दृढ होकर अपने को ईश्वरानुभव में लगा दिया है उसे स्वप्न में भी कभी यह ज्ञात न होगा कि असफलता या पराजय किस का नाम है। सर्व प्रकार की असफलता काल्पनिक है न कि वास्तविक। पतन, पराजय, अवनति तथा स्वार्थपरता की ओर प्रवृत्ति ये मनुष्य की शिक्षा और अनुभव के कारण हैं। इनसे मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है और जिज्ञासू को अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायता मिलती है। यदि हम अपने प्रत्येक घृणित कार्य को अपने परों तले रौंद डालें तो हम अपने पापों की एक सीढ़ी बना सकते है, इस बात को समझ लेना मुक्ति के मार्ग में प्रवेश करना है। जो मनुष्य इस बात को अच्छी तरह से समझ लेता है उसकी त्रुटियाँ और उसके अवगुण उच्चतर वस्तुओं के प्राप्त करने में सीढ़ी का काम देते है।

यदि एक बार भी तुम इस बात को समझ लो कि तुम्हारी असफलता, तुम्हारे दु:ख और तुम्हारे कष्ट इस बात के सूचक हैं कि तुम में कौन कौन अवगुण और कौन कौन त्रुटियां हैं और तुम कहां पर मुक्ति के मार्ग से गिर गए हो, तो तुम बराबर अपने को देखते रहोगे और गिर पड़ कर और ठोकरें खा खाकर तुम्हें यह ज्ञात हो जाएगा कि तुम्हें कहां से कार्य प्रारम्भ

करना है और कौन सी बात तुम्हें अपने मन से दूर करनी है कि जिससे तुम्हारे हृदय में ईश्वरीय प्रेम की जागृति हो जाए और तुम ईश्वर के निकट पहुच जाओ। ज्यों ज्यो तुम प्रतिदिन उन्नति करोगे और माया, स्वार्थपरता को अपने भीतर से दूर करोगे, त्यो त्यो ईश्वरीय प्रेम तुम पर धीरे धीरे प्रगट होगा। जब तुम्हारी क्रोधादि कषाएँ मन्द होने लगेंगी, जब तुम विषय वासनाओं के वशीभूत न होकर उनको अपने वश में करने लगोगे और जब तुम में शांति और सहनशीलता आने लगेगी, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि ईश्वरीय प्रेम का तुम में प्रादुर्भाव होने लगा है, तुम मुक्ति के मार्ग पर लग गए हो और बहुत शीघ्र ईश्वर के निकट पहुँचने वाले हो।

ईश्वरीय प्रेम और मानुषी प्रेम में सबसे बड़ा अंतर यह है कि ईश्वरीय प्रेम स्वार्थ और पक्षपात से सर्वथा रहित होताहै। मानुषी प्रेम वस्तु विशेष से होता है और स्वार्थयुक्त होता है। जब इच्छित वस्तु का वियोग हो जाता है तब उस के प्रेमी को भारी दुःख होता है। ईश्वरीय प्रेम सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसे होताहै। किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष से नही होता परन्तु कोई वस्तु या व्यक्ति उससे बाहर भी नही होता।जो मनुष्य अपने मानुषी प्रेम को धीरे धीरे इतना पवित्र और विस्तृत बना लेता है कि उसके सर्व प्रकार के अपवित्र और स्वार्थयुक्त विचार नष्ट हो जाते है तो उसे फिर कोई दुःख या कष्ट नही होता।मानुषी प्रेम संकुचित, परिमित, स्वार्थयुक्त होता है, इसी कारण वह दुःख और कष्ट का कारण है। परन्तु इसके विपरीत जो प्रेम विशुद्ध, पवित्र और स्वार्थ-रहित होताहै,उससे किसी प्रकार का दुःख

या कष्ट नहीं हो सकता,तो भी ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिए मानुषी प्रेम की अत्यन्त आवश्यकताहै। अर्थात् मनुष्य को उस समय तक ईश्वर से कदापि प्रेम नहीं हो सकता जब तक कि वह मनुष्योंसे सच्चा और गहरा प्रेम न करे। मानुषी प्रेम और मानुषी कष्टों में से होकर ही ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति और उस का अनुभव होता हैं।

जिस प्रकार वे वस्तुएँ जिन पर संसारी जीव मोहित होते हैं, नाश को प्राप्त हो जाने वाली हैं, उसी प्रकार मानुषी प्रेम भी अनित्य और विनाशीक हैं, किन्तु केवल एक प्रेम ऐसाहै जो कभी नष्ट नहीं होता और उसका सम्बन्ध बाह्य वस्तुओं से नहीं है। उस प्रेम का नाम ईश्वरीय प्रेम है।

जहां मानुषी प्रेम है वहां मानुषी द्वेष भी है, परन्तु एक प्रेम ऐसा है कि जिसका कोई विरोध नहींहै और वह ईश्वरीय प्रेम है। वह सर्व प्रकार के स्वार्थपरता के विचारों से रहित है और इतना सुन्दर और सुगंधित है कि चहु ओर उसकी महक फैली हुई है।

मानुषी प्रेम ईश्वरीय प्रेम का प्रतिबिम्ब है और आत्मा को उस पवित्र प्रेम की ओर आकर्षित करता है जिसमें शोक,दुःख और परिवर्तन का नाम नहीं।

अच्छा है कि माता अपने नन्हें से बच्चे से जो एक छोटे से मांस के लोथड़े के सदृश उसकी छाती पर पडा हुआ है, इतना प्यार करे कि उसे अपने तन बदन की सुध न रहे और वही माता जब अपने उसी बच्चे को मृत्यु-शैय्यापर पड़ा हुआ देखे तो धाड़ मार मार कर रोए और उसके वियोग में पागल

हो जाए। अच्छा है कि उसकी आंखोंसे आंसू टपकते रहें और उसका हृदय दुःख और शोक से व्यतीत रहे, कारण कि इसी प्रकार उसको सांसारिक पदार्थों और सुखो की क्षणिकता, अस्थिरता, और चचलता का ज्ञान होगा और वह धीरे धीरे निरंजन, निर्विकार, अनंत और अविनाशी परमात्मा के निकट तर पहुचती जाएगी।

यह अच्छा है कि प्रेमी, भ्राता,भगिनी, पति,पत्नी घोर कष्ट और दु ख सहें और जिस वाह्य वस्तु पर वे तन मनसे मोहित हैं उसके छिन जाने पर शोक और निराशा के कूप में गिर पड़ें, कारण कि एसा होनेसे उनका ध्यान उस परमपिता परमात्मा की ओर आकर्षित होगा कि केवल जिसके पास जाने से उन्हे परम आनन्द, नित्य और स्थाई सुख की प्राप्ति होगी।

यह अच्छा है कि लोभी, स्वार्थी और अभिमानी मनुष्य दुःख और शोक उठाए, परास्त हों और विपत्ति की झुलसा देने वाली आग मे से होकर गुज़रें कारण कि ऐसा करने से ही हठी और अभिमानी मनुष्य जीवनकी समस्याओं को हल करने के लिए तैयार हो सकते हैं और इसी प्रकार मनुष्य का हृदय नम्र और विशुद्ध होकर ईश्वरानुभव में लग सकता है।

जब मानुषी प्रेम में भीगे हुए हृदयमें दुःखका कांटा चुभता है और जब प्रेम और विश्वास के विचारों से पूर्ण आत्मा को वियोग, अन्धकार और एकांत के विचार धु धला करते हैं, ऐसे समय में ही मनुष्य का हृदय ईश्वरीय प्रेम की ओर आकर्षित होता है और एक मात्र उसी की शरण में जाना चाहता है। जिस

मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय प्रेम हो वह कभी निराश और दु खित नहीं होता। उसके शोक और दु ख का अन्त हो जाता है। विपत्ति के समय में भी लोग उसका साथ देते हैं।

ईश्वरीय प्रेम का विभव केवल उसी मनुष्य के हृदय में प्रगट हो सकता है कि जो दुःख और वेदना सह २ कर शुद्ध हो गया है। और ईश्वर-दर्शन केवल उसी समय हो सकता है कि जब स्वार्थपरता और अज्ञानता का सर्वनाश हो जाए।

केवल उसी प्रेम को ईश्वरीय प्रेम कह सकते हैं जिसमें स्वार्थ की गंध नहीं, पक्षपात का नाम नहीं और जिसका अंत दुखदाई नहीं।

जो लोग स्वार्थ में अंधे हो रहे हैं और सांसारिक विषय वासनाओं में फँसे हुए हैं वे प्राय यह सोचा करते हैं कि ईश्वरीय प्रेम का उस ईश्वर से सम्बन्ध है कि जिसके पास हमारी पहुंच नहीं हो सकती और वह एक ऐसी वस्तु है कि जो हमसे बहुत दूर है और सदा हमसे दूर रहेगी। हमें कभी उस की प्राप्ति नहीं होगी, इसलिए उसके लिए उद्योग करना निष्फल है। नि.सन्देह ईश्वरीय प्रेम स्वार्थ और वासना से बहुत दूर है, परन्तु जब मन और हृदय में से स्वार्थपरता का अभाव हो जाता है तो निःस्वार्थ प्रेम, विशुद्ध प्रेम और ईश्वरीय प्रेम का प्रकाश हो जाता है और वह सदा के लिए मनुष्य के हृदय का एक अंग बन जाता है। इस विशुद्ध और उच्च कोटि के प्रेम से आत्मा की केवल पापों से मुक्ति ही नहीं होती, किंतु वह उसे इतने उच्च पद पर पहुंचा देता है कि उसकी फिर कभी लोभ और पाप की ओर प्रवृत्ति नहीं होती।

परन्तु अब प्रश्न यह है कि इस प्रकार के उच्च और विशुद्ध प्रेम की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। सत्य और ज्ञान की दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर यही है और सदैव यही होगा कि पहले तू अपने आपको खाली करले, फिर मै तुझे भर दूंगा। ईश्वरीय प्रेम का उस समय तक ज्ञान नही हो सकता जब तक स्वार्थ का नाश न हो जाए। कारण कि,स्वार्थ का होना प्रेम के न होने का सूचक है। जब तक स्वार्थ को मन और हृदय से न निकाला जाएगा तब तक प्रेम की विशुद्ध आत्मा अज्ञानता के बंधनों को न तोडेगी और न अपने वास्तविक अनुपम सौंदर्य्य में प्रगट होगी।

जैसे तुम्हारा विश्वास है कि महात्मा ईसा शूली पर चढ़ाए गए और फिर वे जीवित हो गए, मै यह नही कहता कि तुम्हारा यह विश्वास झूठा है, परन्तु यदि तुम इस बात पर विश्वास करने से इन्कार करो कि प्रेम की सभ्य और पवित्र आत्मा तुम्हारी स्वार्थयुक्त इच्छाओं और वासनाओ की शूली पर प्रति दिन खैंची जाती हैं, तो फिर मै तुम से यह अवश्य कहूंगा कि इस प्रकार का विश्वास न करना तुम्हारी भूल है। और यह भी प्रकट करता है कि तुमने महात्मा ईसा के प्रेमकी वास्तविकता बिलकुल भी नहीं समझी है।

तुम कहते हो कि हमने ईसा महात्मा के प्रेम में मुक्ति का स्वाद चख लिया है अर्थात् मुक्ति प्राप्त करली है। परन्तु मै तुम से पूछता हूं कि क्या तुमने अपने स्वार्थ, स्वभाव, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष और परनिंदा के विचारो से भी मुक्ति प्राप्त करली है। यदि नहीं की है, तो फिर किस बात से की है?

और किस बात में तुमने महात्मा ईसा का काया पलट देने वाला प्रेम प्राप्त किया है।

जिस मनुष्य ने ईश्वरीय प्रेम को भली भांति समझ लिया है वह एक नया आदमी बन गया है। मानो उसकी काया पलट हो गई है और स्वार्थ और वासना के पुराने विचारों ने उस पर अधिकार प्राप्त नहीं किया है। ऐसा मनुष्य अपने शील, संतोष, इन्द्रिय-निग्रह, सभ्यता और पूर्ण उदारता के लिए प्रसिद्ध है।

ईश्वरीय प्रेम आत्मा की केवल एक तरंग या भाव नहीं है, किंतु यह ज्ञान की उस अवस्था का नाम है कि जो दुःख या पाप के आधिपत्य और विश्वास को सर्वथा नष्ट कर डालती है और आत्मा को परमानन्द का अनुभव कराती है। जो लोग ब्रह्मज्ञानी हैं और ईश्वरीय प्रेम के मानने वाले हैं उनके लिए ज्ञान और प्रेम दोनों एक ही वस्तु हैं और दोनों में कार्य कारण का अविनाभावी सम्बन्ध है।

उसी ईश्वरीय प्रेम को भली भांति समझने के लिए सारी दुनियां घूम रही है। इसी लिए दुनियां का अस्तित्व हुआ है। और जब हमको तनिक भी सुख की प्राप्ति होती है और हम अपनी आत्मा को विचारों, पदार्थों और उद्देश्यों की ओर लगाते हैं तो मानों हम ईश्वरीय प्रेम के समझने का उद्योग करते हैं। परन्तु दुनियां इस समय इस ईश्वरीय प्रेम को नहीं समझती। कारण कि वह अदृष्ट होजाने वाली परिछांई को भी पकड़ रही है और अंधी होकर वास्तविक पदार्थ के लेने में त्रुटि कर रही है। यही कारण है कि दुनियां में शोक और दुःख निरन्तर रहते हैं औ

उस समय तक निरन्तर रहेंगे जब तक कि दुनियां अपने ऊपर आप डाली हुई विपत्तियो से शिक्षा ग्रहण करके निःस्वार्थ प्रेम और सुख और शांतिदायक ज्ञान को प्राप्त न कर लेगी।

और इस प्रेम, इस ज्ञान, इस, शांति और इस हृदय की विशुद्धि को वे ही लोग प्राप्त कर सकते है और समझ सकतेहैं कि जो स्वार्थ को त्याग देते हैं और जो नम्रता पूर्वक उन सब बातों के समझने के लिए तैयार हैं कि जिनमें स्वार्थत्याग की ज़रूरत है। दुनियां में कोई स्वतत्र और स्वाधीन शक्ति नहीं है और भाग्य के कड़े बंधन-जिनमें लोग जकड़े हुए है-उनके अपने ही बनाए हुए है। दुनियां के लोग उन चीज़ो के बधनो में फंसे हुए हैं कि जो उनको इस लिए दु ख पहुचाती हैं कि वे दुःख उठाना पसन्द करते है। बंधनोंमें जकड़ रहना उन्हें अच्छा लगता है,इसलिए कि वे समझते है कि हमारे स्वार्थ का तंग और अंधेरा कैदखाना सुन्दर और रमणीक है उनको इस बात का भय है कि यदि हम इस कैदखाने को छोड़ देंगे तो हमारा सारा असली माल जाता रहेगा। किसी विद्वान ने कहा है कि "तुम आप ही अपनी तरफ से दु ख उठाते हो, कोई तुम्हे उस के लिए बाधित नही करता। कोई आदमी तुम्हें पकडता नहीं इस लिए कि तुम जिओ और मर जाओ।" वह अंतरंग शक्ति जिसने बेड़ियो को बनाया और अपने चहुंओर तंग और अंधेरा क़ैदख़ाना तैयार किया, जब चाहे उन्हे तोड़ कर बाहर निकल सकती है। आत्मा उसी समय ऐसा विचार करती है कि जब उसे अपने क़ैदख़ाने की बेक़दरी मालूम हो जाती है और जब वह बहुत दिनों तक कष्ट उठा कर अनन्त प्रकाश और अपरिमित प्रेम के स्वागत के लिए तैयार हो जाती है।

जैसे परिछांई शरीर के साथ २ रहती है और धुआं अग्नि के पीछे पीछे चलता है वैसे ही कारण के बाद कार्य होता है। और जैसे मनुष्य के अच्छे वा बुरे विचार और कार्य होते हैं उन्हीं के अनुसार उसे सुख दु:ख उठाना पड़ता है। दुनिया में ऐसा कोई कार्य नहीं कि जिसका प्रत्यक्ष वा परोक्ष कारण न हो; और कारण भी सदा पूर्ण न्यायके अनुसार होता है। लोग इस कारण से शोक और दु:ख उठाते है कि उन्होंने पूर्व में बुरे कर्म किए हैं। जो लोग अच्छे कर्म करते हैं उन्हें अच्छे फल की प्राप्ति होती है। कर्म का सिद्धांत अटल और विश्वव्यापी है। राजा से लेकर रक तक उसके आधीन है। क़हावत भी है कि जैसा बोओगे वैसा काटोगे। इस हाथ दो, उस हाथ लो। अच्छे कर्म करो, अच्छा फल मिलेगा, बुरे कर्म करो, बुरा नतीजा होगा। जो लोग जौ बो कर गेहू की आशा रक्खें, वे मूर्ख हैं। जौ बोने से जौ और गेहूं बोने से गेहूं पैदा होता है। अतएव यदि तुमको अच्छे फल की आशा है तो बुराई के बीज बोना छोड़ दो, भलाई करना सीखो। तुम दूसरों को धोका मत दो, दूसरे तुम्हें कदापि धोका नहीं देंगे। तुम दूसरो के साथ भलाई करो, दूसरे स्वयमेव तुम्हारे साथ भलाई करेंगे।

दुनियां नि:स्वार्थ प्रेम के भाव को नहीं समझती, कारण कि वह स्वार्थ में अन्धी होरही है। उसे रात दिन अपने ही विषय भोगों की लालसा लगी रहतीहै और विनाशीक पदार्थोंके प्रेम में ऐसी लिप्त रहती है कि अज्ञानता से उन्हीं को नित्य और स्थाई समझती है। संसारिक विषय-वासनाओ में फस कर और शोक और दु:ख की अग्नि में भस्म होकर वह ईश्वर की शांत और सुंदर छवि के दर्शन नहीं कर पाती। जब तक वह

माया और अज्ञानता में फंसी हुई है,तब तक वह ईश्वरके दर्बार से कोसों दूर है। उसमें निःस्वार्थ वा ईश्वरीय प्रेमका अभाव है।

लोगों में यह प्रेम नहीं है और न वे इसे समझते हैं, इसी लिए वे ऐसे अगणित सुधार उपस्थित किया करते हैं कि जिन में किसी प्रकार की अंतरंग आहुति की आवश्यकता नहीं पड़ती और इसी लिये प्रत्येक मनुष्य समझता है कि मेरे इस सुधार से सदा के लिये दुनियां मुक्तिके मार्ग पर लग जाएगी। परन्तु वह स्वयं अपने हृदय में बुराई के वीज वोकर बुराई फैला रहा है। इसका नाम सुधार नहीं है। सुधार उसका नाम है कि जो मनुष्यके अंतरंग वा हृदयकी शुद्धि करे। कारण कि सर्व प्रकार की बुराइयां हृदय से ही उपजती है, और जब तक दुनियां स्वार्थ और पक्षपात से रहित होकर ईश्वरीय प्रेम का पाठ न सीखेगी,तब तक उसको सतयुगके सुखका अनुभव न होगा।

आवश्यकता यह है कि धनवान निर्धनोंको तुच्छ न समझें और निर्धन धनवानों को, निंदा न करें। लालची और लोभी मनुष्य दान करना और त्याग करना सीखें और विषयी लोग सुशील और संयमी वनें। भिन्न भिन्न पक्ष के लोग परस्पर में लड़ाई झगड़ा करना छोड़ और नीच और सकुचित हृदय के मनुष्य उदार बनना सीखें। ईर्ष्या और द्वेष रखने वाले मनुष्य दूसरे के हर्ष में हर्ष मनावें और निंदा करने वाले मनुष्य अपने दुष्कृत्योंसे लज्जित हो। यदि समस्त स्त्री पुरुष इसके अनुसार प्रवृत्ति करे तो फिर देखो अभी सतयुग आ जाता है। अतएव जो मनुष्य अपने हृदय और मनको विशुद्ध कर लेता है वह दुनियां का बड़े से बड़ा उपकारक है।

यद्यपि दुनियां सतयुग के सुखों से वंचित है और बहुत काल तक वंचित रहेगी, तथापि यदि तुम चाहो तो अभी सत-युग में प्रवेश कर सकते हो। हां, तुम्हें इसके लिये स्वार्थ का त्याग करना और ईर्षा द्वेश, निन्दा, और घृणा को त्याग कर क्षमा और सभ्यता पूर्ण प्रेम को ग्रहण करना होगा।

जहां निन्दा, घृणा और द्वेष है वहां पर ईश्वरीय प्रेम का अभाव है। यह प्रेम केवल उसी मनुष्य के हृदय में रहता है कि जिसने सब प्रकार से दूसरों की निन्दा करना छोड़ दिया है।

तुम कह सकते हो कि भला हम धूर्त्त, मायाचारी, पाखंडी और शराबी लोगोंसे किस प्रकार प्रेम कर सकते हैं, ऐसे लोगों से तो हमें विवश घृणा करनी पड़ती है। निःसन्देह तुम ऐसे लोगों को हृदय से प्यार नहीं कर सकते हो, परंतु तुम्हारे इस कथन से तो कि तुम्हें उनसे विवश घृणा करनी पड़ती है, यह सिद्ध होता है कि तुम उस उच्चतम सार्वप्रेम अर्थात ईश्वरीय प्रेमसे अनभिज्ञ हो, तुम्हें उनसे भी घृणा नहीं करनी चाहिये। कारण कि सम्भव है कि तुम्हारा हृदय खुल जाए और तुम्हारे अन्तरङ्ग में ईश्वरीय प्रकाश का प्रवेश हो जाय कि जिससे तुम उन कारणों को भली भांति समझ सको कि जिनसे उन लोगों की ऐसी दुर्दशा हुई और उन पर तरस खाकर उनके प्रति सहानूभूति रख सको और अन्त में उनके सुधार का ठीक ठीक उपाय सोच सको। जब तुमको यह ज्ञान हो जाएगा तो फिर कभी यह सम्भव नहीं कि तुम ऐसे लोगों से घृणा करो अथवा उनको बुरा कहो। फिर तुम सदा उनको दया, प्रेम और करुणा की दृष्टि से देखोगे।

तुम लोगो से प्रेम करते हो और उनकी प्रशंसा करते हो परन्तु यदि वे तुमसे घृणा करने लगें अथवा तुम्हारी इच्छा और रुचि के प्रतिकूल कार्य करने लगें और उस समय तुम भी उनको घृणा की दृष्टि से देखने लगो और उनकी निन्दा करने लगो तो ज्ञात होगा कि तुममें ईश्वरीय प्रेम का अभाव है। जिसमें ईश्वरीय प्रेम का सद्भाव है वह स्वप्न में भी किसी का बुरा चिन्तवन नही करता। जो मनुष्य दूसरो की निन्दा करता है अथवा अपने मन में किसी का बुरा सोचता है वह ईश्वरीय प्रेम से अनभिज्ञ है।

जिस मनुष्य को यह ज्ञात है कि प्रेम समस्त वस्तुओ के भीतर विद्यमान है और जिसने उस प्रेम की पूर्ण शक्ति का अनुभव कर लिया है उसके मन में दूसरो की निंदा करने का तनिक भी स्थान नही रहता। फ़ारसी के प्रसिद्ध नैतिक विद्वान शैख़-सादी साहब ने कहा है कि ईश्वरीय प्रेम के ये अर्थ हैं कि "अपनों से राग मत कर और दूसरों से द्वेष मत कर।" अर्थात् सबके प्रति एकसा भाव रख। मित्र और शत्रु का भाव अपने मन से निकाल दे। जो लोग तेरी प्रशंसा करें और जो लोग तेरी निंदा करें, दोनों को एक दृष्टि से देख। इसका नाम ईश्वरीय प्रेम है।

जिन लोगों को इस प्रेम का ज्ञान नहीं है, खेद है वे ही लोग अपने भाइयों पर दोषारोपण करने, उनको दंड देने और फांसी तक का हुक्म सुनाने के लिए बैठ जाते है। उस समय उन्हें यह याद नहीं रहता कि कोई सच्चा न्यायकारी भी है। जो लोग जितना उनके विचारों, उनके मन्तव्यो और उनके उद्देश्यो के प्रतिकूल होते है उतना ही वे उनको मूर्ख, पापी, मायाचारी,

अदूरदर्शी और विचारशून्य समझते हैं। और जो लोग जितना उनके विचारों से सहानुभूति रखते हैं, उतनी ही वे उनकी प्रशंसा करते हैं। यही वे लोग हैं जो स्वार्थ और माया में डूब रहे हैं। परन्तु इसके विपरीत जिसके हृदय में उच्चकोटि का प्रेम है, जो ईश्वरीय प्रेम में भीगा हुआ है,वह इस प्रकार दूसरों की निंदा नहीं करता और न उनमें ऐसा भेदभाव रखता है। न वह लोगों को अपनी राय पर लाना चाहता है और न उन्हें अपने उद्देश्यों की उच्चता का विश्वास दिलाना चाहता है। प्रेम के सिद्धान्त को भली भांति जान कर वह उसके अनुसार जीवन व्यतीत करता है और सब लोगों के प्रति उसी प्रेम, प्रीति और शांति का व्यवहार करता है। पापी और धर्मात्मा, मूर्ख और विद्वान, स्वार्थी और परमार्थी सब उसके शांत और गम्भीर विचारों से समान लाभ उठाते हैं। वह सबको एक दृष्टि से देखता है और सब के प्रति प्रेम भाव रखता है।

तुम अपने मन और इन्द्रियों को निरंतर वश में करने से और अपने ऊपर पूर्ण विजय प्राप्त करने से ही इस अलौकिक ज्ञान और इस ईश्वरीय प्रेम को प्राप्त कर सकते हो। जिन लोगों का हृदय विशुद्ध है, केवल वे ही लोग ईश्वर-दर्शन कर सकते हैं। सच कहा है "साँचे राचे राम।" जब तुम्हारा अंतरंग पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाएगा तब तुम फिर नए सिरे से जन्म लोगे और तुम में ऐसा प्रेम पैदा हो जाएगा कि जिसका कभी भी विनाश नहीं होगा और न जिसके अंत में किसी प्रकार का दुःख या शोक होगा। उसकी प्राप्ति से तुम में पूर्ण रूप से शांति आ जाएगी।

जो मनुष्य ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है वह सदा अपने को दूसरो की निंदा करने अथवा उनसे घृणा करने के विचार से रोकता है। जहाँ कहीं निर्दोष, पवित्र, आध्यात्मिक ज्ञान है, वहाँ घृणा, द्वेष और परनिंदा का सर्वथा, अभाव रहता है। उसी हृदय में ईश्वरीय प्रेम की पूर्ति और प्राप्ति होती है जिसमें ईर्ष्या, घृणा और द्वेष का अंश भी नहीं रहा है।

कितने दुःख की बात है कि जहाँ देखो वहीं लोग परस्पर में धर्म के नाम पर लड़े मरते है। हिंदू मुसलमान को बुरा कहता है, मुसलमान हिंदू की बुराई करता है। इतना ही नही हिन्दुओं में जैनी आर्यसमाजियो को मिथ्यात्वी कहते है, आर्य्य, समाजी जैनियों को नास्तिक कहते हैं। निरतर परस्पर में शास्त्रार्थ होते रहते है, जिनका परिणाम द्वेष और शत्रुता के सिवाय और कुछ नहीं होता। हाँ, जहाँ प्रेम और शांति का वास होना चाहिए था, वहाँ लडाई झगडा देखने में आता है।

सच कहा है कि जो मनुष्य अपने भाई से द्वेष रखता है वह हिंसक और हत्यारा है। वह ईश्वर की प्रेमयुक्त आत्मा की हिंसा करता है। याद रक्खो, जब तक संसार के समस्त लोगों को, चाहे वे आस्तिक हों चाहे नास्तिक, चाहे सम्यक्ती और चाहे मिथ्यात्वी, चाहे धर्मात्मा और चाहे पापी, समान दृष्टि से न देखोगे और ईर्ष्या द्वेष और पक्षपात को छोड़ कर सबको एकसा न समझोगे, तब तक तुम उस प्रेम से वञ्चित रहोगे जो मुक्ति और स्वाधीनता का कारण है।

जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान और ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति

हो जाती है उसके भीतर से दूसरों के दोष ढूंढने और उनकी निंदा करने के भाव जाते रहते हैं और सर्व प्रकार की बुराई दूर हो जाती है। उसके भीतर ऐसा उच्च,निर्मल और विशुद्ध प्रकाश फैल जाता है कि उसके द्वारा स्पष्ट प्रगट होने लग जाता है कि प्रेम, न्याय और सच्चरित्रता सर्व व्यापी, सर्व विजयी और अविनाशी हैं।

अपने मन में सभ्य, पवित्र, प्रबल और निष्पक्ष विचारोंको स्थान दो। अपने हृदय में प्रेम, दया और अनुकम्पा के भाव उत्पन्न करो। अपनी जिह्वा को बन्द रखने और सच्ची बात के कहने में सधाओ। ऐसा करने से तुम शांति और पवित्रता के मार्ग में प्रवेश करोगे और अन्त में नित्य और अविनाशी प्रेम को प्राप्त करोगे। बिना कहे ही लोग तुम्हारे भक्त बन जाएगे और तुम्हारी बातोंपर श्रद्धान करने लगेंगे। बिना वाद-विवाद किए ही लोग तुम्हारे सिद्धांतो को सच्चा समझने लगेंगे और तुम्हारी शिक्षाओं के अनुसार प्रवृत्ति करने लगेंगे। बुद्धिमान पुरुष स्वतः तुम्हें ढूंढ लेंगे। तुम्हें उनको अपना परिचय देनेकी जरूरत नहीं होगी। वे स्वतः अपने मन को तुम्हारे आधीन कर देंगे और तुम्हारे विचारों से सहमत होंगे। तुम्हें उनके विचार मालूम करने के लिए तनिक भी उद्योग नहीं करना पड़ेगा; कारण कि प्रेम में बिजली की शक्ति है। प्रेम के शब्द, कार्य और विचार कभी नष्ट नहीं हो सकते।

यह जानना कि प्रेम सर्व-व्यापक और सर्व-शक्ति-सम्पन्न है और एक ऐसी वस्तु है कि जिसके बाद फिर किसी वस्तु की जरूरत नहीं रहती; तथा बुराई के फन्दों से निकलना, अतंरा

में किसी प्रकार की चिंता या द्विविधा का न रहना और यह जानना कि सब लोग अपनी अपनी रीति से ब्रह्म की प्राप्ति में लीन हैं और शांत, गंभीर और निश्चिंत रहना, इसी का नाम शांति है, यही आनन्द है, यही अमरत्व और यही निःस्वार्थ और ईश्वरीय प्रेम का प्राप्त करना है।



ईश्वरानुभव—

५. ब्रह्ममें लीन हो जाना ।



यद्यपि मनुष्य संसार के अस्थिर और क्षण भगुर पदार्थों की इच्छा करता है और रात दिन अपने शरीर के पोषण में लगा रहता है, तथापि वह अनादि काल से इस बात को भली भांति जानता है कि उसका जीवन वास्तव में क्षणिक और अनित्य है। थोड़े दिनों के लिये ही ही उसने इस देह को धारण किया है। एक दिन उसकी यह देह कृश हो जायगी और यह शरीर जिसके बनाव शृङ्गार में वह रात दिन लिप्त रहता है, मिट्टी में दब जाएगा, अथवा अग्नि में भस्म हो जाएगा अथवा चील, कौओं का आहार बन जाएगा। उसने कभी कभी एकान्त में ईश्वर के अस्तित्व के समझने का भी उद्योग किया है और अश्रुधारा बहाकर ईश्वरीय गुणों का स्मरण किया है, जिससे उसके हृदयमें एक प्रकारका आनन्द और उल्लास उत्पन्न हुआ है।

यद्यपि मनुष्य का यह विचार निरर्थक है कि इस संसार के सुख नित्य और स्थाई है तथापि उसके शोक और दु ख उसे

निरन्तर इस बात का स्मरण कराने को रहते हैं कि ये सुख वास्तव में सुख नहीं है, किंतु सुखाभास हैं और क्षणिक और विनाशीक है। इन में कुछ भी स्थिरता नहीं है और इनसे मनुष्य को किसी प्रकार की भी शांति नहीं मिल सकती है। यद्यपि मनुष्य सदा इस बात पर विश्वास करनेका उद्योग करता है कि पूर्ण ज्ञान द भौतिक पदार्थों में ही है, परन्तु उसे यह भी ज्ञात है कि उसके भीतर एक ऐसी वस्तु है जो इस विश्वास के सर्वथा विरुद्ध है और यह विरोध इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सांसारिक पदार्थों में आनन्द नहीं है। सच्चा और पूर्ण आनन्द केवल ईश्वरानुभव में है।

यही श्रद्धान का मूल है और इसी पर समस्त मतों और धर्मों का आधार है। यही प्रेम और भ्रातृत्वका तत्व है। अर्थात् यहकि मनुष्य निश्चय, आध्यात्मिक दृष्टि से अनन्त और अनादि है और साक्षात् ईश्वर का रूप है। यद्यपि वह शारीरिक बन्धन में जकड़े हुए होने के कारण विनाशीक है और नाना प्रकार के दुःखों में ग्रसित है तथापि वह सदा इस बात का उद्योग करता रहता है कि अपने निजी गुणों का ज्ञान प्राप्त करे।

मनुष्य की आत्मा परमात्मा से कभी पृथक नहीं हो सकती और न कभी किसी ऐसी वस्तु को प्राप्त करके जो परमात्मा से पद में कम है, सतुष्ट हो सकती है। मनुष्य के हृदय पर दुःख का भार उस समय तक बराबर बना रहेगा और शोक की परिछांई उसके मार्ग में उस समय तक बराबर अन्धकार फैलाती रहेगी जब तक कि वह इस पानी के बुलबुले के समान अस्थिर और क्षणभंगुर जगत् में मारे २ भटकने रहने से मुह मोड़ कर

अपने निज घर में न आवे अर्थात दुनियां से मुंह मोड़ कर ईश्वर भक्ति में न लग जाए और ब्रह्म में लीन न हो जाए।

जिस प्रकार समुद्र के छोटे से छोटे जल-बिंदु में, यद्यपि वह समुद्र से पृथक है, समुद्र के समस्त गुण पाए जाते हैं, उसी प्रकार यद्यपि मनुष्य उस अनन्त ज्ञान और अनन्त प्रकाश संयुक्त ईश्वर से भिन्न है तथापि उसमें ईश्वर की सदृश्यता पाई जाती है और जिस प्रकार कि जल का बिंदु प्रकृति के नियमानुसार अंत में समुद्र में ही जायगा और उसमें मिलकर अदृश्य हो जायगा, उसी प्रकार मनुष्य भी एक न एक दिन अवश्य अपने मूल अर्थात ईश्वर की ओर आकर्षित होगा और उसमें ही लीन हो जायगा।

ईश्वरानुभव करना और उस ब्रह्म में लीन हो जाना है, बस यही मनुष्य का उद्देश्य है। ईश्वरीय नियमों से पूर्ण सहानुभूति रखना इसी का नाम प्रेम, शांति और बुद्धिमानी है, परन्तु जब तक मनुष्य माया और भ्रम जाल में फंसा हुआ है तब तक वह ब्रह्म से दूर है और सदा दूर रहेगा। द्वेष, माया और स्वार्थपरता एक ही वस्तु है और प्रेम और निस्वार्थता से उलटी है। स्वार्थपरता को सर्वथा त्याग देने से अपने और पराए का विचार मन से दूर हो जाता है और मनुष्य निजानन्द को प्राप्त कर लेता है अर्थात् ईश्वरानुभव करता है और ब्रह्म में लीन होजाता है।

जो लोग दुनियां में स्वार्थ में फंसे हुए हैं वे इस प्रकार के स्वार्थत्याग को एक भारी विपत्ति और हानि समझते हैं; परन्तु सच पूछो तो यही सच्चे सुख का कारण है और यही सच्ची

और स्थाई लक्ष्मी है। इसके सामने और सब चीजें नीच और तुच्छ है। जो मनुष्य अस्तित्व के गुप्त सिद्धांतों से अनभिज्ञ और अपने जीवन के रहस्य से अपरचित हैं वे फूल की कली की तरह मुरझाने वाली और शीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तुओं पर मोहित हो जाते है। इस प्रकार मोह करने से अन्त में वे अपने आप भी नष्ट हो जाते हैं।

इस मिट्टी के पुतले से लोग इतना प्रेम करते है और इस प्रकार इसकी इच्छाओं की पूर्ति करते हैं कि मानो यह सदा के लिए अजर अमर रहेगा। यद्यपि ये इस बात के भूलने का भी प्रयत्न करते है कि यह शरीर, शीघ्र नष्ट हो जायगा, परन्तु मृत्यु का भय और इस बात का भय कि जिन वस्तुओं से हम प्रेम करते है वे सब नष्ट हो जाएंगी, उनके सुखको दुःख में परिवर्तन कर देता है और उनका स्वार्थ भयंकर रूप में भूतकी तरह उनके पीछे पीछे फिरता है।

सांसारिक सुखो और शारीरिक भोग-विलासों के बढ़ने से लोगों के अन्तरङ्ग आत्मिक ज्ञान पर आवरण पड़ जाता है और वे संसार की विनाशीक वस्तुओं और विषय-वासनाओ में अधिकतर लिप्त हो जाते हैं और जहां पर अधिक बुद्धिमान मनुष्य रहते हैं वहां पर बुद्धि बल से शरीर के अविनाशी होने के विषय, में जो विश्वास होता है वह निश्चित सिद्धांत समझा जाता है। जब मनुष्य की आत्मा पर किसी प्रकार का स्वार्थ छा जाता है तो आध्यात्मिक दृष्टि से किसी विषय पर विचार करने की शक्ति उसमें नहीं रहती और वह क्षणिक वस्तुओं को स्थाई पदार्थों से, नित्य को अनित्य से, विनाशीक को

अविनाशीक से, सत्य को मिथ्या से और ब्रह्म को माया से मिला देता है। यही कारण है कि दुनिया में इस प्रकार के विचार और विश्वास भरे हुए हैं कि जो किसी मानुषी अनुभव पर निर्धारित नहीं हैं। हाड़ मांस के बने हुए प्रत्येक शरीर में पैदा होने के समय से ही नाश हो जाने के अंश मौजूद हैं और यह शरीर अपनी ही प्रकृति के अटल सिद्धांत के अनुसार एक न एक दिन अवश्य नष्ट हो जाएगा।

इस दुनियां में जिस वस्तु को स्थिरता है वह कभी नष्ट नहीं हो सकती और जिस वस्तु को अस्थिरता है वह कभी रह नहीं सकती। जो सत्य है वह सत्य ही रहेगी, मिथ्या नहीं हो सकती और जो मिथ्या है वह मिथ्या ही रहेगी; कभी सत्य नहीं हो सकती। मनुष्य का शरीर विनाशीक है, उसे वह कभी अविनाशीक नहीं बना सकता। हाड़ चाम का बना हुआ शरीर कभी नित्य और स्थिर नहीं हो सकता, परन्तु हां, शरीर पर विजय प्राप्त करके, इन्द्रियों को दमन करके और इच्छाओं को अपने वश में करके मनुष्य नित्य लोक में पहुंच सकता है। एक मात्र ईश्वर ही नित्य और अविनाशीक है, इस बात को अच्छी तरह समझ कर ही मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है और परम पिता जगदीश्वर के निकट पहुंच कर नित्यता का लाभ कर सकता है।

यह सारी दुनियां और इसके लाखों करोड़ों जीव जन्तु अनित्य, अस्थिर और विनाशीक हैं। इनमें से किसी को भी नित्यता नहीं है केवल जिस नियम पर दुनियां चल रही है उसी को नित्यता है। दुनियां के अनेक रूप हैं और पृथकत्व

उसका गुण है, परन्तु जिस नियम पर वह चल रही है वह एक और एकत्व उसका गुण है। स्वार्थ और इन्द्रियों के दमन करने से मनुष्य दुनिया पर अधिकार प्राप्त करता है और मिथ्या, भ्रम और माया के अन्ध पर्दे से निकल कर सत्य और ब्रह्म के पूर्ण प्रकाश में पहुंच जाता है जहां से समस्त क्षणिक और विनाशीक अवस्थाओं का अभाव होता है।

अतएव मनुष्य मात्र को उचित है कि इन्द्रिय-निग्रह करना सीखें, अपनी पाशविक वासनाओं को दमन करें, भोग विलास में लिप्त न हों और सासारिक सुखों को तुच्छ और क्षणिक समझें। सदाचार और धर्माचरण में प्रवृत्ति करें। दया, प्रेम, क्षमा, शांति, नम्रता और सहनशीलता आदि ईश्वरीय गुणों का अभ्यास करें और प्रतिदिन आत्मोन्नति करते जाएं, यहां तक कि अंत में ब्रह्मलोक में प्रवेश करकेईश्वर के दर्शन करलें।

जिस मनुष्य ने अपने स्वार्थ को इतना नष्ट कर दिया और अपनी इन्द्रियों को इतना अपने वश में कर लिया है कि सब जीवों के प्रति समान भाव रखता है, सब को प्रेम दृष्टि से देखता है और किसी से द्वेष नहीं रखता, उसी मनुष्य के ज्ञान चक्षु हैं, उसी को ब्रह्मज्ञान है और वही मनुष्य ब्रह्म और माया के भेद को जान सकता है। अतएव सर्व-श्रेष्ठ मनुष्य वह है जो बुद्धिमान और दूरदर्शी है, पवित्र और निर्दोषी है, सभ्य और शिक्षित है और ज्ञानी और विवेकी है। जिस मनुष्य में तुम पूर्ण सभ्यता, सहनशीलता, नम्रता, मृदुभाषिता, इन्द्रिय-निग्रह, स्वार्थ-त्याग, प्रेम और अनुराग देखो तो समझलो कि उसको उच्च-कोटिका ज्ञानप्राप्त होगया है। ऐसे मनुष्यकी संगति

ग्रहण करो कारण कि उसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है और ईश्वरीय गुणों के कारण वह ईश्वर के निकट वास करता है। उसकी आत्मा ने परमात्मा का अनुभव कर लिया है और उस मे और परमात्मा में कोई भेद नहीं रहा है। उस मनुष्य पर कभी भूलकर विश्वास न करो जो कामी और क्रोधी है, लोभी और अहंकारी है और जिसमें प्रेम और सहानुभूति नहींहै और उदारता और नि स्वार्थता नहीं है, कारण कि वह विवेक-शून्य है। उसके ज्ञानचक्षु मुंदे हुए हैं। उसके वचन और कार्य नष्ट हो जाने वाले हैं, कारण कि उनकी नींव विनाशीक वस्तु पर है। मनुष्य को उचित है कि स्वार्थ को छोड दे, सांसारिक वासनाओं को त्याग दे और आपेका विचार मनसे निकाल दे। केवल इसी मार्ग का अवलम्बन करने से वह अनत-गुण-संयुक्त परमात्मा के हृदय में वास कर सकता है।

यह दुनिया,यह शरीर और यह सवर्थ मृग-तृष्णाके सदृश हैं अथवा स्वप्नवत् हैं। इनपर विश्वास करना अथवा इन पर मोहित होना अज्ञानता है। जिन लोगों को आत्मिक ज्ञान हो गया है, जिन्होंने ईश्वरानुभव कर लिया है वे कदापि इन पर मोहित नहीं होते। वे दुनियां को और दुनिया की वस्तुओं को अपने से पृथक समझते हैं। यद्यपि वे दुनिया में रहते हैं तो भी दुनियां से मोह नहीं करते।

एक ऐसा महान् नियम है कि जिसका पूर्ण रूप से पालन करना होता है, एक ऐसा सिद्धांत है कि जो सम्पूर्ण भेद भाव का कारण है और एक ऐसा असूल है कि जिसमें इस दुनिया के सम्पूर्ण नियम और प्रश्न परिछाई की नाई अदृश्य हो जाते

हैं। इसी उसूल,इसी नियम और इसी सिद्धांत का भली भांति समझना ईश्वरानुभव करना है और ब्रह्म में लीन होना है।

प्रेम को अपने जीवन का सिद्धांत बनाना मानो सुख और शांति का प्राप्त करना है। पाप और बुराई से सब तरह से बचना; बुराईके बदले बुराई न करना अर्थात् जो आदमी बुराई करे उसके साथ बुराई न करना भलाई से कभी संकोच न करना और हमारे भीतर जो पवित्रता और शांति विद्यमान है उसकी ओर चित्त को लगाना और उसके अनुसार प्रवृत्ति करना मानो पदार्थों के वास्तविक रूप को जानना है और परम ब्रह्म परमात्मा के उस अनत स्थाई नियम का ज्ञान प्राप्त करना है कि जो केवल स्थूल पदार्थों के देखने वाले वाह्य चक्षुओ को कभी दिखलाई नहीं देता। जबतक यह नियम अच्छी तरह से समझ में नहीं आता, तब तक आत्मा को शांति प्राप्त नहीं हो सकती और जो मनुष्य इसको अच्छी तरह से समझ लेता है, वास्तव में वही बुद्धिमान है। इससे यह तात्पर्य नहीं है कि उसमें विद्वानों जैसी बुद्धिमानी है, किन्तु यह तात्पर्य है कि उसका हृदय विशुद्ध है और उसके मन में किसी प्रकार का छल, कपट और मायाचार नही है।

जो मनुष्य अनादि निर्धन और परमब्रह्म परमात्मा को भली भांति समझ लेता है वह इस लोक से स्वर्गलोक में प्रवेश करता है, शरीर को छोड़ कर आत्मा का ध्यान करता है और मृत्यु के जाल से निकल कर अजर अमर पदको प्राप्त करताहै।

ईश्वरानुभव करना अथवा ब्रह्म में लीन होना यह कोई झूठा विचार और कल्पित सिद्धांत नही है। यह उस अवस्था

का नाम है जो निरंतर आत्म चिंतवन करने और हृदय को विशुद्ध रखने से प्राप्त होती है। यह कोई आसान बात नहीं है, इसके लिए वर्षों इन्द्रिय-निग्रह करना और मन को जय करना पड़ता है। जब हम शरीर से तनिक भी ममता नहीं रखते, शरीर को धारण करते हुए भी अपने को शरीर से भिन्न समझते है, जब हम सम्पूर्ण विषय वासनाओं को भद्र कर लेते हैं भूख प्यास की वेदना को सहन कर सकते हैं, जब हम अपने मन को पूर्णतया अपने वश में कर लेते हैं, तब हमारा चित्त चंचल चलायमान नहीं होता, हमारा श्रद्धान सम्यक श्रद्धान और ज्ञान सम्यक ज्ञान हो जाता है और हमें पूर्ण शांति प्राप्त हो जाती है। केवल उसी समय हमें ईश्वरानुभव होता है, हम ब्रह्म में लीन हो जाते हैं और फिर हम में और परमात्मा में कोई भेद भाव नहीं रहता। एक रूप और एक गुण हो जाते हैं।

लोग जीवन की कठिन समस्याओं को हल करते करते थक जाते है, तंग आजाते हैं, बूढ़े हो जाते हैं और अंत में इस दुनियां से चल बसते हैं और कठिनाइयों को योंही बिना हल किए छोड जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे स्वार्थ और इन्द्रियों के बंधन में इतने जकड़ रहते है कि उतने तंग और अँधेरे रास्ते से बाहर नहीं निकल सकते। मनुष्य अपने स्वार्थयुक्त जीवन की रक्षा करने के लिये सत्य और ब्रह्म के उच्च और नि स्वार्थ जीवन को नष्ट कर देता है और विनाशीक पदार्थों से प्रेम करके ईश्वरीय ज्ञान से वंचित रहता है।

स्वार्थ के त्याग देने से तमाम कठिनाइयां दूर हो जाती हैं और अज्ञानता का सर्वनाश हो जाता है। कितना ही कोई कठिन

और जटिल प्रश्न क्यों न हो, इन्द्रिय–निग्रह और आत्म–विजय से सरल हो जाता है। जितनी भी कठिनाइयां हैं, वे सब हमारी ही पैदा की हुई हैं और हमारे ही भ्रम के कारण है। जब स्वार्थ जाता रहता है और माया का नाश हो जाता है तो उनके साथ साथ सारे भ्रम जाते रहते है। माया के वशीभूत होकर लोग ब्रह्म से वंचित रहते है। उन्हें स्वार्थ का अधिक ध्यान रहता है, वे रात दिन इन्द्रिय-सुखो की लालसा करते रहते हैं, इसी कारण वे सच्चे, पवित्र और स्थाई सुख को खो बैठते है। प्रसिद्ध विद्वान कारलाइल का कथन है कि सुख की इच्छा से बढ़कर भी मनुष्य में एक और चीज़ है। मनुष्य इन्द्रिय-सुख के बिना रह सकता है और उसके स्थान में आत्मिक सुख प्राप्त कर सकता है। इन्द्रिय सुखो में लिप्त न होओ ईश्वर से प्रेम करो, यही सन्मार्ग है, यही मुक्ति–मार्ग है। जो इस मार्ग पर चलता है वह सदा सुखी रहता है।

जिसने उस स्वार्थ और इन्द्रिय लोलुपता को त्याग दिया है कि जिसमें प्राय लोग फंसे रहते है, वह सर्व प्रकार के दुःखो से मुक्त हो गया है और उसने उच्च कोटि की सादगी प्राप्त कर ली है जिसको दुनियां के लोग अज्ञानता के जाल में फंसे होने के कारण मूर्खता कहते हैं। दुनियां के मूर्ख लोग चाहें जो कहा करें, परन्तु उसने उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर लिया है और वह ब्रह्म में लीन हो गया है। बिना उद्योग किए ही वह अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है, और जितनी भी कठिन और जटिल समस्याएं है, वे सबकी सब उसके सामने सरल हो जाती है, कारण कि उसने मुक्ति-मार्ग में प्रवेश कर लिया है। क्षण क्षण में बदलनेवाले

कारणों और परिणामों से उसे कोई सम्बंध नहीं। केवल स्थिर और निश्चित सिद्धांतों से सम्बन्ध रखता है। उसका हृदय विशुद्ध और निर्मल ज्ञान से प्रकाशमान रहता है। सर्व प्रकार की इच्छाओं, वासनाओं, अज्ञान और पक्षपात को त्याग कर उसने ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लिया है और स्वर्ग के सुख की इच्छा और नरक के दुःख को सर्वथा दूर करके और जीवन तक की ममता को मन से निकाल कर उसने अक्षय सुख को पालिया है और वह जीवन-मुक्त हो गया है। उसने इस लोक के क्षणिक जीवन को त्याग कर उस लोक के स्थाई जीवन को प्राप्त कर लिया है जो संसारिक जीवन और मृत्यु के बीच में पुल बांध देती है और अपने अजरत्व और अमरत्व को जानती है। जब उसने नि संकोच होकर सब कुछ दे डाला तो कहना चाहिये कि उसने सब कुछ पा लिया है और अब वह ईश्वर की गोद में सुख चैन की नींद सोता है।

वही मनुष्य ईश्वरानुभव कर सकता है और वही मनुष्य ब्रह्म में लीन हो सकता है कि जिसने स्वार्थ को इतना त्याग दिया है कि उसके लिए जीना और मरना दोनों अवस्थाएं समान हैं और वह प्रत्येक अवस्था में साम्यभाव रखता है। न उसे जीने की लालसा है और न उसे मरने का भय है। वही मनुष्य अक्षय और अनंत सुख का लाभ कर सकता है कि जिसने स्वार्थ और माया को सर्वथा भुला कर ब्रह्म में अपने को लगा दिया है। ऐसे मनुष्य को न कभी शोक और लज्जा होती है और न कभी निराशा और पश्चात्ताप, कारण कि जहां किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रहता, वहां दुःख भी नहीं रह सकते

ऐसे मनुष्य पर जो कुछ बीतती है उसे वह अपने लिए हितकर ही समझता है। वह सदा सन्तोषी रहता है कारण कि अब वह स्वार्थ का दास नही है, किंतु ईश्वर का भक्त है। दुनियां की भली बुरी घटनाओं का उस पर कुछ भी असर नही होता कारण कि वह वस्तु स्वभाव से परिचित है। न उसे किसी से राग है और न किसी से द्वेष है। वह सदा शांतिभाव रखता है। चाहे दुनियां में घोर सग्राम हुआ करे, परन्तु उसकी शांति में भग नही पड़ती। चाहे लोग उस पर कितना ही क्रोध करें, उसे कितना ही कष्ट दें और चाहे उसके प्राण तक भी ले लेवें, परन्तु वह सब के साथ प्रेम भाव रखता है। शत्रु और मित्र को समान समझता है। चाहे देखने में विपरीत हो, परन्तु वह जानता है कि दुनिया उन्नति कर रही है और प्रत्येक दशा में ईश्वर की कृपा है। ऐसे मनुष्य प्रत्येक दशा में सुखी और सन्तोषी रहते है और ईश्वर को धन्यवाद देते रहते हैं।

जब तेज़ आंधी चल रही हो तो उससे इन महापुरुषों के चित्त पर किसी प्रकार का क्लेश नही होता, कारण कि वे जानते है कि यह आंधी शीघ्र ही दब जायगी और जब दो शत्रुओं में घोर सग्राम हो रहा हो और नित्य हज़ारों प्राणियो का सहार होरहा हो, तब भी वे महानुभाव अपने चित्त में दुःखी नही होते कारण कि वे जानते हैं कि एक न एक दिन शांति होगी और इस अशांति के खडहर और रक्त की धारा में से ही एक दिन ज्ञान-मदिर की स्थापना होगी अर्थात् लोग ज्ञान उपार्जन करेंगे।

ऐसे मनुष्य अत्यन्त शांत, गम्भीर, सरल प्रकृति और उदारचित्त होते है । उनके दर्शनो से जन्म सफल होता है। उनके शब्दो को लोग ध्यान से सुनते हैं और उन पर एकान्त में विचार करके अपने लिए आत्मोन्नति का मार्ग निकालते है। एसे मनुष्यों के विषय में कहा जाता है कि उन्होने ईश्वरानुभव कर लिया है, अपनी आत्मा में परमात्मा के दर्शन कर लिए है और ब्रह्म में लीन हो गए हैं।

९. ऋषि, मुनि और मुक्ति दाता ।

सेवा धर्म ।

प्रेम भाव जो विशुद्ध और पवित्र जीवन में प्रगट होता है, संसार में सर्वोत्तम वस्तु है और ज्ञान का सर्वोच्च उद्देश्य है।

किसी मनुष्य में कहां तक सत्य है, इसका अनुमान उसके प्रेम से किया जा सकता है। उस मनुष्य मे सत्य कोसों दूर है कि जिसके जीवन पर प्रेम का अधिकार नहीं है जिन लोगों में द्वेष और पक्षपात है और जिनमें सहनशीलता नहीं है वे चाहे कैसे ही उच्चधर्म के मानने वाले हों तो भी उनमे सत्य बहुत ही कम है। परंतु इसके विपरीत जो लोग सहनशील हैं और जो दोनों पक्ष की युक्तियों को ध्यान पूर्वक सुनकर और स्वय भी किसी प्रश्न पर प्रत्येक दृष्टि से निष्पक्ष विचार करके परिणाम निकालने के लिए उत्सुक रहते हैं, उन में पूर्ण रूप से सत्य मौजूद है। किसी मनुष्य के ज्ञान और बुद्धि की अतिम पहिचान यह है कि वह किस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, उसका स्वभाव कैसा है और परीक्षा और जांच के समय

उसकी प्रवृत्ति कैसी होती है। अनेक मनुष्यो को इस बात का अभिमान होता है कि हमें ब्रह्म-ज्ञान है हम में सत्य विद्यमान है परन्तु वे सदा शोक दु ख और निराशा मे फंसे रहते है और पहिली ही विपत्ति के आने पर उसके बोझ मे दब जाते हैं और उसे सहार नही सकते। सत्य ज्यो का त्यों रहता है। उसमें कभी परिवर्त्तन नही होता। जिसमें परिवर्त्तन होता है वह सत्य नहीं है और जितना मनुष्य सत्य पर दृढ रहता है उतना ही वह धर्म में दृढ़ होता जाता है और अपनी कषायों और वासनाओं को त्यागता हुआ उन्नति करता जाता है।

लोग मिथ्या और कल्पित सिद्धांत स्वय गढ़ लेते हैं और उन्हें ही सत्य कहने लगते हैं। वास्तव में सत्य गढ़ा नहीं जाता। सत्य का वर्णन करना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। साधारण बुद्धि का उस तक गम्य नही है। केवल निरंतर के अभ्यास से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है और विशुद्ध हृदय और निर्दोष जीवन में ही उसका प्रकाश हो सकता है।

अब प्रश्न यह है कि जहां इतने मत मतान्तर, और धर्म और सम्प्रदाय है उसमें से किसको सच्चा कहें। सच बात तो यह है कि सच्चा वही है कि जो सच्चाई का अपने जीवन में व्यवहार करता है और जो मन, वचन, काया से सत्य का पालन करता है। जो मनुष्य अपने मन को अपने वश में करके सब मत मतान्तरो से बढ जाता है और किसी धर्म वा सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रखता, किन्तु सर्व प्रकार के राग द्वेष कलह निंदा, और पक्षपात से रहित होकर एकांतवास करता है और शांत और गम्भीर स्वभाव होकर अपनी इच्छाओं को

अपने वश में कर लेता है और सब के साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करता है उसी को पूर्ण सत्य व ब्रह्म ज्ञान प्राप्त है।

जो मनुष्य प्रत्येक अवस्था में शांत, गम्भीर और सहनशील रहता है वही सच्चा और ब्रह्मज्ञानी है। सत्य केवल शाब्दिक वाद विवाद और धर्म-ग्रन्थों से सिद्ध नही हो सकता कारण कि यदि लोग सत्य को दया, क्षमा, शांति और सहनशीलता द्वारा नहीं जान सकते तो केवल शब्दो द्वारा कदापि नहीं जान सकते।

क्रोधी मनुष्य के लिए एकान्त में अथवा शांति की अवस्था में शांत और गम्भीर होना आसान है। कृपण और संकुचि हृदय मनुष्यो के लिए भी उस समय सभ्य और दयालु होना आसान है कि जब और लोग उनसे प्रेम से व्यवहार करें, परन्तु जो मनुष्य घोर विपत्ति में भी शांति और धैर्य को हाथ से नहीं जाने देता और कठिन से कठिन अवस्था में भी सभ्यता और नम्रता का व्यवहार करता है उसी मनुष्य को ब्रह्मज्ञान है और इसका कारण यह है वि ऐसे उच्च गुण केवल ब्रह्मा वा ईश्वर में ही पाए जाते हैं और केवल वही मनुष्य इनका अपने जीवन में प्रकाश कर सकता है कि जिसने उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर लिया है, स्वार्थ, माया, और वासना को जय कर लिया है और जिसने सब से बड़े नित्य और स्थाई सिद्धांत को भली भांति समझ लिया है और उसके अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। अतएव लोगो को ब्रह्म और सत्य के विषय में व्यर्थ की युक्तियां न देकर केवल ऐसी बातें सोचनी, कहनी और करनी चाहिए कि जिन से प्रेम, क्षमा, शांति, सुविचार और सहानभूति

उत्पन्न हों। उन्हें अंतरंग गुणों का अभ्यास करना चाहिए और नम्रता और दृढ़ता से श्रम करके उस ज्ञान की खोज करनी चाहिए कि जो आत्मा को सर्व प्रकार के पापों और दोषो से रहित करता है और हृदय को निर्मल और विशुद्ध वनाता है।

केवल एक ही सर्वव्यापी सिद्धांत है जो विश्व भर का कारण है। उसमें अन्य सर्व सिद्धांत गर्भित है। वह प्रेम का सिद्धांत है। यद्यपि भिन्न भिन्न देशों में और भिन्न २ समयो में वह सिद्धांत भिन्न २ नामो से पुकारा गया है, परन्तु ज्ञानी पुरुष उसको चाहे जिस नाम से पुकारो, समझ जाते है। नाम और धर्म दुनियां से मिट जाते है, परन्तु प्रेम का सिद्धांत अमिट है। उसका किसी युग में और किसी काल में भी नाश नहीं होता। उसको जानने और उसके अनुसार जीवन व्यतीत करने से मनुष्य अजर अमर वन जाता है, जन्म मरण के दुख से छूट जाता है।

आत्मा इस सिद्धांत को समझने का उद्योग करती है और यही कारण है कि लोग पुनः पुनः जन्म लेते है, कष्ट उठाते हैं और मरते हैं। जिस समय यह सिद्धांत भली भाति समझ में आ जाता है तो सारे दर्द दुःख दूर हो जाते है और आवागमन का सिलसिला टूट जाता है। और उस समय आत्मा परमात्म अवस्था को प्राप्त कर लेती है। आत्मा और परमात्मा का भेदभाव जाता रहता है। आत्मा और परमात्मा एकमेक हो जाते है।

इस सिद्धांत में स्वार्थ का तनिक भी मेल नहीं है। इसका

प्रकाश सेवाधर्म है। जब मनुष्य का पवित्र हृदय ब्रह्म को भली भांति समझ लेता है, तब उसे सब से अंतिम सब से उत्तम और सब से पवित्र आहुति देनी पड़ती है और वह आहुति यह है कि श्रम और उद्योगसे प्राप्त हुए सुख को दूसरों पर न्यौछावर करदे। इस आहुति द्वारा पवित्र और मुक्ति आत्मा शरीर रूपी वस्त्र धारण करके संसारी मनुष्यों में रहने के लिए आती है और निर्धन और नीच मनुष्यों के साथ मनुष्य मात्र की सेविका बन कर संतोष से रहती है। उच्चकोटि की नम्रता जो ऋषि, महर्षियो और मुक्तिदाताओ में पाई जाती है वह ईश्वर की छाप है। जिस मनुष्य ने स्वार्थ को बिलकुल नष्ट कर दिया है और जो अनन्त असीम और अक्षय प्रेम का साक्षात नमूना बन गया है, वह ईश्वर का अवतार है और इस योग्य है कि उसके मरने पर लोग उसकी पूजा उपासना करे। जो मनुष्य अपने में ईश्वरीय नम्रता को पैदा कर लेता है अर्थात केवल स्वार्थ को ही नही मार लेता किंतु सब के साथ नि.स्वार्थ प्रेम का व्यवहार करता है, इसका बड़ा सन्मान होता है और वह मनुष्य मात्र के हृदय में आध्यात्मिक साम्राज्य स्थापित कर लेता है।

जितने ऋषि, महर्षि और धर्म-प्रचारक हुए है सब ने स्वार्थ वासना और इन्द्रिय भोग विलासो का त्याग किया है, सांसारिक सुख सम्पदा को तुच्छ समझा है और सत्य और ब्रह्म का उपदेश दिया है और तदनुसार जीवन व्यतीत किया है। उनके जीवन की घटनाओ और उनके उपदेशों का मिलान करने से ज्ञात होगा कि उन सब में प्रेम, शांति, नम्रता, नि.स्वार्थता और सरलता आदि एक ही प्रकार के गुण पाए गए हैं। उन्होंने इन्हीं

गुणों का उपदेश किया और इन्हीं का स्वय अभ्यास किया। उन्होने उन ईश्वरीय सिद्धांतो की शिक्षा दी कि जिनके भली भांति समझ लेने से सब प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं। जो लोग मनुष्य जाति के उद्धारक और मुक्ति दाता समझे जाते हैं और जिनकी पूरी उपासना ली जाती है वे ईश्वर के अवतार थे, इसी लिए कषायों और वासनाओं से रहित थे। उनके निज के कोई सिद्धांत नही थे, और न उनकी निज की कोई सम्पति थी, इस लिए उन्होंने स्वयं दूसरोंको अपने मत में लाना अथवा अपना शिष्य बनाना उचित नहीं समझा। वे उच्चतम भलाई और पूर्ण पवित्रता में जीवन व्यतीत करते थे, इस लिए उनका एक मात्र उद्देश्य यह था कि मन, वचन काया से उस भलाई का प्रकाश करके मनुष्य जाति का उद्धार करें। ऐसे पूज्य पुरुष मनुष्य जाति का ईश्वर के साथ सम्बन्ध कराने वाले हैं अर्थात लोगो को मुक्ति का मार्ग दिखला कर ईश्वर तक पहुचाने वाले हैं।

जो लोग स्वार्थ और माया में लिप्त रहते है और ईश्वरीय गुणो को नहीं समझते वे अपने मुक्ति दाताओं के सिवाय अन्य मुक्ति दाताओ को ईश्वर का अवतार नही समझते और न उन्हे पूज्य दृष्टि से देखते है अर्थात मुसलमान समझते है कि केवल मोहम्मद साहब ही हमारे मुक्तिदाता है और वे ही पूज्य हैं। हिंदू समझते हं कि महाराज रामचन्द्र जी ही पूज्य है अन्य कोई नही। ईसाई समझते है कि महात्मा ईसा ही एक मात्र मुक्तिदाता हं केवल उन्ही के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। इसका यह परिणाम होता है कि परस्पर में द्वेष बढ़ता है और धर्म के

नाम पर नित्य लड़ाई झगड़े होते है । एक धर्मावलम्बी अपने सिद्धांतों का पोषण करता हुआ यहां तक जोश में आ जाता है कि दूसरे धर्म वाले को नास्तिक और मिथ्यात्वी तक कह डालता है। नित्य देखने में आता है कि हिंदू मुसलमानों को बुरा कहते हैं, तो मुसलमान हिन्दुओंको बुरा कहते है। इस प्रकार वे लोग अपने ही गुरुओं और तीर्थंकरों की शिक्षाओं और उनके जीवन के महत्व और सौन्दर्य को नष्ट कर रहे हैं। सत्य परिमित नहीं हो सकता और न कभी किसी व्यक्ति या समाज अथवा सम्प्रदाय विशेष का उस पर स्वामित्व हो सकता है । सत्य अनंत और अपरिमित है और प्राणी मात्र का उस पर स्वामित्व हो सकता है। सत्य का स्वार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं। स्वार्थ का प्रवेश होते ही सत्य का अभाव हो जाता है।

ऋषि मुनि और मुक्तिदाता की उच्चता और प्रतिष्ठा केवल इस बात में है कि उसने अत्यन्त नम्रता और उच्चतम निःस्वार्थ का अभ्यास कर लिया है और सब कुछ त्याग दिया है, यहा तक कि उसने अपने आप का विचार भी छोड़ दिया है। उसके जितने भी काम हैं सब उत्तम, दृढ़ और पवित्र है और उसका कारण यह है कि उसमें किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं पाया जाता। वह सदा देता रहता है। लेने का उसे कभी विचारभी नहीं होता। वह जो कुछ भी काम करता है अपने भरोसे पर करता है। पिछली बातों का कभी पश्चाताप नहीं करता और भविष्य की कभी आशा नहीं करता और न कभी इस बात का ख्याल करता है कि मै ने अमुक काम अच्छा किया, इसका अच्छा फल मुझे मिलेगा। वह जो कुछ करता है अपना धर्म

और कर्त्तव्य समझ कर करता है, किसी फल, पुरस्कार वा प्रतिष्ठा की आशा से नहीं करता है।

जब किसान जमीन में हल चला कर उसको जोत लेता है और उसमें बीज डाल देता है तो वह जानता है कि मुझे जो कुछ करना था वह मैं कर चुका और अब मुझे चाहिये कि मैं इन्द्र देवता अर्थात् वर्षा और प्रकृति पर विश्वास करूं और सन्तोष और धैर्य के साथ फ़सल पैदा होने के समय तक ठहरा रहूं। कारण कि व्यर्थ की चिंता करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। फ़सल की पैदावार ज्यों की त्यों रहेगी, उसमें कुछ भी घटती बढ़ती न होगी। इसी प्रकार जिस मनुष्य ने सत्य और ब्रह्म को समझ लिया है और ईश्वरानुभव कर लिया है, वह मनुष्य ऐसा है कि जिसने नेकी, भलाई, और प्रेम, शांति और पवित्रता के बीज बो दिये हैं और किसी प्रकार की आशा नहीं रखता और न फल की प्रतीक्षा करता है। कारण कि उसे ज्ञात है कि दुनिया में एक नियम काम करता है जिसके अनुसार सब काम अपने अपने समय पर नियमित रूप से हुआ करते हैं। उसी नियम के अनुसार जीवों का पालन होता है और उसी के अनुसार संहार होता है।

लोग निःस्वार्थ हृदय की पवित्र सादगी को न समझ कर अपने ही तीर्थंकर विशेष को ईश्वर का अवतार समझते हैं। और ख्याल करते हैं कि यह मुक्तिदाता साधारण वस्तुओं से पृथक है और नैतिक दृष्टि से सब मनुष्यों से बढ़कर है, कोई इसकी समानता नहीं कर सकता। ऐसा विचार करना भ्रम है। यह कहने से कि मनुष्य में पूर्ण होने की, ईश्वरानुभव करने की

वा ब्रह्म में लीन होने की शक्ति नहीं है, मनुष्य का साहस टूट जाता है और उसकी आत्मा सदैव के लिए पाप-पंक में डूबी रहती है। फिर उसके लिए कोई आशा नहीं रहती। यह विचार मिथ्या है। प्रत्येक आत्मा उन्नति कर सकती है और मुक्ति प्राप्त कर सकती है। निःसन्देह मुक्ति प्राप्त करने से पहिले दु:ख सहन करने पड़ते हैं, विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, परंतु इन्ही के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति का मार्ग इन्ही दु:खो और विपत्तियों में से हो कर है। देखो, महात्मा ईसा ने कितने दुःखो को सहकर निर्वाणपद को प्राप्त किया। बुद्धदेव ने भी ऐसा ही किया। और भी जितने ऋषि, मुनि, और तीर्थंकर हुए सब ने निरंतर तप और इन्द्रिय-निग्रह से मुक्ति पद को प्राप्त किया। एक वार तुम अपने मन में इस वात को स्वीकार कर लो और इस पर विश्वास ले आओ कि श्रम और उद्योग से तुम भी अपनी इन्द्रियों को दमन कर सकते हो और अपने मन को अपने वश में रख सकते हो। वस, फिर तुम्हारे ज्ञान-चक्षु खुल जाएँगे और तुम्हें एक मनोज्ञ और विशाल दृश्य दिखलाई देने लगेगा। बुद्ध महाराज ने प्रण किया था कि जब तक मैं पूर्णता को प्राप्त न कर लूंगा, अपने उद्योग को न छोड़ूंगा। उन्होंने वास्तव में ऐसा ही कर दिखलाया। उन्होंने अपने उद्योग को बरावर जारी रक्खा और एक दिन उन्हें पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हो गई – उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई।

पाठकगण, जो काम बड़े बड़े ऋषि, महर्षियों ने किए हैं उन्हें तुम भी कर सकते हो, परंतु शर्त यह है कि तुम उनका पूर्ण रूप से अनुकरण करो, उनके अनुसार जीवन व्यतीत करो।

दूसरे शब्दों में स्वार्थ और माया का त्याग करो और नि.स्वार्थ सेवा का व्रत ग्रहण करो।

सत्य या ब्रह्म बहुत सादी और सरल वस्तु है। उसका आदेश केवल यह है कि स्वार्थ वा माया को छोड़कर मुझ में आ जाओ। अर्थात् पाप और अपवित्रता से अपने को निकाल लो फिर मैं तुझे आराम दूँगी। केवल बात इतनी है, इसी की टीका टिप्पणी में लोगों ने बड़े बड़े ग्रन्थ लिख डाले है। परन्तु उनके कारण उस मनुष्य से सत्य छिपा नहीं रह सकता कि जो सत्य की खोज में है। सत्य को जानने के लिए विद्या और विज्ञान की आवश्यकता नहीं है। विद्या विना भी सत्य जाना जा सकता है। जो मनुष्य स्वार्थ और माया की चाह में रहता है वह बड़ी भूल में है। उसके लिये सच्चाई वेश बदल कर अनेक रूप धारण करती है, परन्तु असली सच्चाई के सुन्दर रूप में और पूर्ण प्रकाश में कभी परिवर्तन नहीं होता। वह सदा ज्यो का त्यों रहता है और नि स्वार्थ हृदय मनुष्य उसके प्रकाश में प्रवेश करके उससे आनन्द उठाता है। केवल तर्क वितर्क करने, अनुमान प्रमाण देने और तत्व चर्चा करने से सत्य समझ में नहीं आ सकता। सत्य को समझने और प्राप्त करने के लिए हृदय को विशुद्ध करने और उत्तम जीवन व्यतीत करने की जरुरत है।

जो मनुष्य सत्य मार्ग का अवलम्बन करता है, वह पहिले अपनी कषाओं और वासनाओं को मंद करना सीखता है। यही धर्म है। यहां से ऋषि-जीवन का प्रारम्भ होता है और ऋषि-जीवन के प्रारम्भ से मुक्ति का द्वार दृष्टिगोचर होता है। जो

मुक्ति का मार्ग।

मनुष्य बिलकुल दुनियां के कारबार में फँसा हुआ है वह अपनी तमाम इच्छाओं को पूरा करता है और उस मनुष्य के लिए राज-नियम के सिवाय और कोई बंधन नहीं है। परंतु धर्मात्मा पुरुष अपनी वासनाओं को दबाता है और अपने मन और इन्द्रियो को अपने वश में रखता है। ऋषि, मुनिगण सत्य के इस शत्रु पर आक्रमण करते है जो स्वयं उनके हृदय के ही गढ़ के भीतर बैठा हुआ है। वे सम्पूर्ण स्वार्थयुक्त और घृणित विचारों को अपने मन में आने से रोकते हैं। अर्हत वा ब्रह्म में लीन मनुष्य वह है जो सर्व प्रकार की कषाय और वासना से रहित हो गया है और जिसके अंग अंग में नेकी और पवित्रता इस तरह बस गई है कि जिस प्रकार सुगन्धि और महक फूल में बसी होती है। उसमें अनंत ज्ञान होता है। उसमें अनन्त सुख और अनंत वीर्य पाया जाता है। उसमें किसी प्रकार का भी मैल वा दोष नहीं होता। वह पूर्ण रूप से विशुद्ध, निर्मल और पवित्र होता है। पवित्रता ज्ञान का चिह्न है। श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में अर्जुन से कहा है —

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ १ ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधि दुःखदोषानुदर्शनम् ॥ २ ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ३ ॥

अर्थात्–मान हीनता, दम्भ हीनता,अहिंसा, क्षमा,सरलता, गुरु-सेवा, पवित्रता, स्थिरता, मनोनिग्रह, इन्द्रियों के विषयोंमें विराग, अहकार–हीनता और जन्म-मृत्यु-बुढ़ापा-व्याधि एव दुखों को, (अपने पीछे लगे हुए) दोष समझना. अध्यात्म ज्ञान को नित्य समझना और तत्व ज्ञान के सिद्धान्तों का परिशीलन इनको ज्ञान कहते हैं। इसके व्यतिरिक्त जो कुछ है वह सत्र अज्ञान है। जो मनुष्य निरतर स्वार्थ के साथ युद्ध करता रहता है और सार्व-प्रेमके सिद्धांतों को ग्रहण करता है उसे ऋषि समझना चाहिये, चाहे वह निर्धन हो या धनवान, चाहे सबल हो या निर्बल।

दुनियाँदार आदमी जो बड़ी बड़ी चीज़ों को प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं, गृह-त्यागियों से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं; उन्हे देख कर वे अपने मन में निःस्वार्थता का भाव ला सकते हैं। गृह-त्यागी लोग ऋषि,मुनियों से, जो शांति से एकांतवास करतेहैं, जिन्हें किसी प्रकारका दुःख शोक वा पश्चात्ताप नहीं है और जिन्होंने सब प्रकार के पापों और दोषों का त्याग कर दिया है, शिक्षा प्राप्त करते हैं। उनके दर्शन करके वे अपने प्रेम और नि स्वार्थ भाव को और भी अधिक विस्तरित कर सकते हैं। ऋषियों और मुनियो से बढ़कर अर्हत और तीर्थन्कर होते है जो प्रेम, त्याग, पवित्रता और नि.स्वार्थता की मूर्ति होते हैं। और जो पाप-पक में पड़े हुए मनुष्यों को हितोपदेश देकर कल्याण-मार्ग पर लगाते हैं।

संसार के प्राणियों के प्रेम में अपने आप को भूलजाना और उनकी सेवा करने में अपना कुछ भी विचार न करना,इसीका

नाम वास्तव में सच्ची सेवा है। अरे मूर्ख और स्वार्थी! तू समझता है कि तेरे काम तुझे मुक्ति दे सकेंगे। इसी कारण तू माया और अज्ञानता के जाल में फसा हुआ अपनी और अपने कार्यों की झूठी प्रशंसा करता है और अपने आपको बड़ा समझता है। परन्तु, सावधान! याद रख कि चाहे तेरा नाम सारी दुनियां में फैल जाए, परन्तु तेरा काम मिट्टी में मिल जाएगा। और सत्य के ईश्वरीय–साम्राज्य में तू नीचे से नीचे समझा जायगा।

जो काम स्वार्थ-रहित है वे ही सदा रह सकते हैं। स्वार्थ के काम बलहीन हैं और शीघ्र नष्ट हो जाएगे। छोटे से छोटे काम को नि'स्वार्थ भाव से हानि उठा कर भी खुशी खुशी करना इसी का नाम सच्ची सेवा है और ऐसे ही काम दृढ़ और स्थाई हैं। इसके विपरीत स्वार्थ से काम करना, चाहे देखने में वह काम कितना ही बड़ा हो और उसमें प्रत्यक्ष में सफलता भी हो, सेवा-धर्मसे अनभिज्ञता सूचित करताहै और ऐसा काम शीघ्र नष्ट हो जाता है।

दुनिया को एक महान् और पवित्र पाठ सीखने के लिए दिया गया है और वह पाठ पूर्ण निःस्वार्थता वा वीतरागता का है। साधु महात्मा, ऋषि मुनि और मुक्तिदाता वे लोग हैं जिन्हों ने इस पाठ के सीखने का बीड़ा उठाया, उसे सीखा और उसके अनुसार कार्य किया। दुनियां में जितने धर्म-ग्रन्थ है वे सब इसी एक पाठ के सिखलाने के लिए रचे गए है। जितने अर्हत और तीर्थङ्कर है, सब इसी की शिक्षा देते चले आए हैं। यद्यपि यह पाठ इतना सरल और सुगम है तथापि संसारी

मनुष्य इस पर ध्यान नही देते और इसकी अवज्ञा करते हैं। इसी का यह परिणाम है कि स्वार्थ और माया के पेचीदे रास्तों में ठोकरें खाते रहते हैं।

सब धर्मों का सार यह है कि मनुष्य का हृदय विशुद्ध और पवित्र होना चाहिए। परमात्म-अवस्था तक पहुंचने के लिए हृदय की विशुद्धता पहली सीढ़ी है। परमात्मावस्था को प्राप्त करने के लिए मुक्ति का मार्ग ग्रहण करना होता है। जो मनुष्य इस मार्ग का अवलम्बन करता है वह शीघ्र ही उस अजर अमर अवस्था को प्राप्त कर लेगा कि जो जन्म मरण के दुःखों से रहित है। उसे इस बात का भी ज्ञान हो जाएगा कि इस दुनियां के पवित्र प्रबन्ध में छोटे से छोटे काम का भी फल मिलता है और कुछ भी उद्योग निष्फल नहीं जाता। कृष्ण, बुद्ध और ईसा ने स्वार्थ-त्याग और आत्मोन्नति द्वारा ही इस पद को प्राप्त किया है। आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। जितना मनुष्य स्वार्थ का त्याग करता जाता है उतना ही उसका आत्मिक गुण-ज्ञान बढ़ता जाता है, यहां तक कि उन्नति करते करते एक दिन आत्मा परमात्मा बन जाती है। प्रत्येक आत्मा का यही अभीष्ट है, और इसी को उसे प्राप्त करना है। और जब तक प्रत्येक आत्मा इस अवस्था को प्राप्त न कर लेगी, तब तक दुनियां का यह लम्बा सफर समाप्त न होगा।

७—परम शांति की प्राप्ति।



ह्य जगत् में निरन्तर दुःख, शोक परिवर्त्तन और अशांति रहती है, परन्तु सब चीज़ों के, हृदय के बीच में शांति पाई जाती है, वहीं ईश्वरवास करता है। मनुष्य इस दुरंगी दुनियां में शामिल है, वाह्य परिवर्तन और अशान्ति में भी, और अंतरग शांति में भी।

जिस प्रकार समुद्र के नीचे बड़े बड़े गहरे सुनसान स्थान होते हैं कि जहां पर सख्त से सख्त आंधी का भी गम्य नहीं हो सकता, उसी प्रकार मनुष्य के हृदयके भीतर बहुत दूर जा कर एक ऐसा सूनसान पवित्र स्थान है कि जहां शोक, दु.ख और पाप की आंधी कदापि नहीं पहुच सकती। इस सुनसान स्थान तक पहुचने और इसमें ज्ञानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का नाम शांति है।

वाह्य जगत् में अनैक्य और अशांति का राज्य है,परतु इस हृदय के जगत्के भीतर एक्य और शांति विद्यमान है। मनुष्यकी आत्मा शोक और कषाय से दु:खित होकर अंधाधुंध पवित्रता

की ओर बढ़ती है और उस अवस्था तक पहुँचने और उसमें ज्ञानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का नाम शांति है। द्वेष के कारण मनुष्य एक दूसरे के शत्रु हो जाते हैं और एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं। इतना ही नहीं, किंतु समाज और देश में वैमनस्य फैल जाता है और युद्ध छिड़ जाता है। इतना होने पर भी लोगोंको कुछ न कुछ विश्वास होता है कि पूर्ण प्रेम हमारी रक्षा कर रहा है और हम सब उसकी छत्र-छाया में हैं। यद्यपि उन्हें स्वय यह ज्ञात नहीं है कि उन्हें ऐसा विश्वास क्यों है। इसी प्रेम को प्राप्त करने और इसमें ज्ञानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का नाम शांति है।

इस प्रेम, शांति और ऐक्य का नाम ईश्वरीय राज्य है. इसके भीतर प्रवेश करना बहुत कठिन है कारण कि बहुत ही कम लोग ऐसे हैं जो स्वार्थ का त्याग कर सकते है और नन्हे बच्चे की भांति निर्दोष बन सकते हैं।

स्वर्ग का द्वार बहुत ही तंग और छोटा है। मूर्ख जन जो दुनियाँ के माया जालमें फंस कर अंधे हो रहे हैं, उसको देख नहीं सकते। वे लोग जिनके नेत्र खुले हुए हैं और जो उस मार्ग को दूर से देखकर उसमें प्रवेश करना चाहते हैं,उनके लिए भी यह द्वार बन्द है और उसका खुलना कठिन है। उस में काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार की भारी भारी बल्लियां लगी हुई हैं। अतएव उसके भीतर वही मनुष्य प्रवेश कर सकता है। जिसने कषायो और वासनाओं का सर्वथा त्याग कर दिया है।

लोग शांति शांति पुकारा करते हैं,परन्तु वहां शाँति कहाँ? वहां तो उसके विपरीत कलह, क्लेश, अशांति और वैमनस्य है

उस ज्ञान के सिवाय कि जिसका स्वार्थत्याग से अभिनाभावी सम्बंध है और किसी भी वस्तु में नित्य और स्थाई सुख नहीं मिल सकता।

जो शांति सामाजिक सुख, इन्द्रिय सुख और सांसारिक विजय से प्राप्त होती है वह क्षणिक और अस्थाई होती है और परीक्षा और विपत्ति के समय नष्ट हो जाती है। विपत्ति में केवल वही शांति स्थिर रह सकतीहै जो नित्य है और जिसका ईश्वर से सम्बन्धहै और केवल वही हृदय उसका अनुभव कर सकता है जिसमें स्वार्थ की गंध नही और जो प्रेम में डूबा हुआ है। भक्ति या पवित्रता में ही नित्य और अविनाशी शांति है। इन्द्रिय-निग्रह करने और मनको वश में रखने से शांति-मार्ग का पता लगता है और ज्ञान का प्रकाश शांति-मार्ग के पथिक के लिए पथ-प्रदर्शक का काम करता है। ज्योंही लोग शांति-मार्ग में पग रखते हैं त्योंही ये लोग उस पवित्रता में सम्मिलित हो जाते है, परन्तु उस पवित्रता का पूर्ण आनन्द केवल उसी समय उठाते है, जब स्वार्थ का सर्वनाश हो जाता है और जीवन विशुद्धतम अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

शांति क्या वस्तु है? स्वार्थ और वासना का त्याग देना, मन से क्रोध की गहरी जमी हुई जड़ को उखाड़ कर फेक देना और अन्त करण के विकारो को मिटा देना।

अतएव पाठकगण, यदि तुम उस प्रकाश को प्राप्त करना चाहते हो कि जो कभी मन्द नही होता, उस आनन्द का लाभ करना चाहते हो कि जिसका कभी अन्त नही होता, और उस शांति रस का पान करना चाहते हो कि जो कभी नीरस नही

होता, इसी प्रकार यदि तुम अपने पापो, क्लेशों, दु:खो और चिंताओं से सदैव के लिए निकलना चाहते हो और पूर्ण प्रकाश-मय जीवन में प्रवेश करना चाहते हो तो अपने ऊपर विजय प्राप्त करो, अपनी इन्द्रियो को दमन करो और अपने मनको वश में करो। अपने प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्य को उस ईश्वरीय शक्ति के आधीन बनाओ कि जो तुम्हारे भीतर है। इसके सिवाय शांति वा मुक्ति प्राप्त करने का और कोई मार्ग नहीं है। यदि तुम इस मार्ग पर चलने से इन्कार करो तो फिर चाहे तुम कितनी ही प्रार्थनाएं करो और कितनी ही पूजा पाठ करो, सब व्यर्थ और निष्फल है। कोई भी देवी देवता तुम्हारी सहायता नही कर सकता। केवल वही मनुष्य अपनी इच्छाओं को वश में कर लेता है जिसको नित्य, नवीन और विशुद्ध जीवन की प्राप्ति होती है।

कुछ समय के लिए इन्द्रिय-सुखो, वाह्य वस्तुओं और सांसारिक बंधनों को त्याग कर अपने हृदय-मंदिर की सब से भीतरी गुफा में अकेले प्रवेश करो। वहां पर तुमको कोई भी स्वार्थयुक्त विचार न दबा सकेगा। वहां पर पूर्ण और पवित्र शांति होगी। यही वह स्थान है कि जहां पूर्ण सुख और आनन्द मिलेगा, परम शांनि प्राप्त होगी। यदि तुम कुछ समय तक उस पवित्र स्थान पर रह कर विचार करोगे और ध्यान लगाओगे तो तुम्हारे ज्ञानचक्षु खुल जाएगे अर्थात् तुम पर सत्य प्रगट हो जाएगा और तुम पदार्थों को उनके वास्त-विक रूप में देख सकोगे। तुम्हारे भीतर यह पवित्र स्थान तुम्हारी अजर, अमर, अविनाशी आत्मा है। यह तुम्हारे भीतर

ईश्वरीय प्रकाश है। जब तुम इसको भली भाँति पहिचान लोगे और इसका अनुभव कर लोगे उसी समय यह कहा जा सकेगा कि तुम अपने रूप को पहिचान गए, तुम ने निजानन्द को प्राप्त कर लिया और तुम ब्रह्म में लीन हो गए। यह शांति-निकेतन है, ज्ञान-मंदिर है और नित्यालोक है। इसे छोड़ कर और कही भी तुमको सुख नहीं मिल सकता और न शांति प्राप्त हो सकती है। यदि तुम एक घंटा भी अपनी आत्मा के स्वरूप को समझ जाओ, यदि एक मिनट भी आत्म-ध्यान में तुम्हारा शुद्ध उपयोग हो जाए तो तुमको मुक्ति प्राप्त करने में तनिक भी विलम्ब न हो।

तुम्हारे सब पाप और दु:ख, तुम्हारे सब भय और तुम्हारी सब चिन्ताएं तुम्हारी अपनी ही पैदा की हुई हैं। चाहे तुम उनसे चिपटे रहो और चाहे उन्हें छोड़ कर अलग हो जाओ, यह तुम्हारे ही हाथ में है। तुम आप ही अपने को दु:ख और चिन्ता में डालते हो और आप ही नित्य और स्थाई सुख को प्राप्त कर सकते हो। कोई दूसरा मनुष्य तुम्हारे पापो को दूर नहीं कर सकता। तुम को आप ही अपने पापो को दूर करना होगा। बड़े से बड़ा गुरु वा तीर्थङ्कर भी इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता कि स्वयं सत्य-मार्ग पर चल कर तुमको मार्ग दिखला दे, परंतु उस मार्ग पर चलना तुम को ही होगा। यह नहीं हो सकता कि उसके चलने से तुमको मुक्ति हो जाए। जब तक तुम स्वयं उद्योग करके आत्मा को बंधन में डालने वाले और सुख और शांति से बंचित रखने वाले अशुभ कर्मों का नाश न करोगे, तब तक तुमको मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

आनन्द और शांति के देवता सदा तुम्हारे पास ही मौजूद

रहते हैं। यदि तुम उन्हें न देखो अथवा उनकी न सुनो और उनके साथ न रहो तो उसका कारण यह हो सकता है कि तुम स्वयं अपने आप को उनसे पृथक रखते हो और दुःख और अशांति के भूत पिशाचों के साथ, जो तुम्हारे भीतर मौजूद हैं, रहना पसन्द करते हो। जो कुछ तुम होना चाहते हो अथवा जो कुछ तुम बनने का दृढ़ संकल्प करते हो, तुम वही हो। तुम जैसा चाहो अपने को बना सकते हो। यदि तुम अपने को पवित्र बना लोगे तो शांति प्राप्त कर सकते हो और यदि अपवित्र रक्खोगे तो दुःख और विपत्ति में ग्रसित रहोगे। अतएव, एक ओर चलो। इस दुनियाँ के दुःखों और झगड़ों से बाहर निकल आओ। स्वार्थ की झुलसा देने वाली लुओं से बचो और अपने आभ्यान्तर आत्म-मंदिर में प्रवेश करो, जहाँ सुख और शांति की शीतल वायु तुम्हारे मन को प्रफुल्लित करेगी और तुम्हें आनन्दप्रद होगी।

पाप और दुःखों की आँधियों से बाहर निकल आओ। जब शांति का बन्दरगाह पास है, तब फिर विपति की भँवर में क्यों पड़े हो ?

स्वार्थ और माया को सर्वथा त्याग दो, फिर देखो परम शांति तुम को प्राप्त है।

अपनी पाशविक वासनाओं पर विजय प्राप्त करलो। स्वार्थ और अनैक्य के प्रत्येक विचार को अपने हृदय से निकाल दो और कर्म रूपी मैल को ज्ञानाग्नि में जला कर अपनी स्वर्णरूपी आत्मा को विशुद्ध बना लो। बस फिर तुम्हें परम शांति का

जीवन प्राप्त हो जाएगा। पाठकगण, ऐसा करने से तुम इसी जन्म में संसार के घोर समुद्र से तिर जाओगे और उस किनारे पर पहुंच जाओगे कि जहां शोक और दुख की आंधियां कभी नही चलतीं और जहां पाप, शका, विपत्ति और दुःख का अंधकार कभी नही छाता। इस किनारे पर दया, पवित्रता, ज्ञान, संतोष और आनन्द की अवस्था में खड़े होकर तुम इस बात को अच्छी तरह से समझ जाओगे कि "आत्मा न कभी पैदा हुई और न कभी मरेगी। न कभी इसका अभाव हुआ। न कभी इसका आदि था और न कभी इसका अन्त होगा।" अर्थात् आत्मा, अनादि अनन्त है, अजर अमर है, जन्म मरण के दुःखो से मुक्त है। चाहे वह शरीर जिसमें आत्मा वास करती है, मृतक दिखलाई दे, परन्तु आत्मा कभी नही मरती अर्थात् शरीर विनाशीक है परन्तु आत्मा अविनाशी है।

तब तुम शोक, दुःख और पाप के अर्थ भली भांति समझ जाओगे और तुम जान जाओगे कि इन सब का अंत ज्ञान है। उस समय तुम्हें जीवन का रहस्य और परिणाम भी ज्ञात हो जाएगा।

इस बात के समझने और जानने के बाद तुम मुक्तिपुरी में पहुंच सकोगे। वहां तुम्हें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त प्रेम की प्राप्ति होगी। उसी का नाम परम शांति का प्राप्त करना है।

ॐ शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

ज्योतिष-प्रवेशिका ।

(नक्षत्र-पट सहित)

सचित्र ! लेखकः— सजिल्द !!

श्रीमान् बाबू चेतनदास जैन B A हैडमास्टर,
गवर्मेन्ट हाईस्कूल, मथुरा ।

ज्योतिष-विषय की ऐसी सचित्र सुबोध पुस्तक अब तक किसी भाषा में प्रकाशित नही हुई। साधारण लोग ज्योतिष को जटिल समझ कर सीखने का प्रयत्न नही करते थे, अब यह बात नही रही। सूर्य, चन्द्र, तारागण का साक्षात परिचय, महीने, ऋतुएँ, दिन रात व लौंद मास के होने के कारण, ग्रहण का रहस्य, पचांग आदि महत्वपूर्ण विषय, तारों को देख कर दिशा व रात्रि का समय बता देना, सक्रांति व लग्न निकालना, जन्मपत्री बनाना आदि अब सरल होगया। विद्वान लेखक ने वर्षों के अध्यन और मनन के पश्चात् इन जटिल विषयों का ऐसी रोचक विधि से वर्णन किया है- कि साधारण बुद्धि का मनुष्य भी स्वल्प श्रम से समझ जाता है। नक्षत्र पट और नक्षत्र-घड़ी आदि मनोमोहक चित्रों से ऐसा प्रतिभासित होता है जैसे सचमुच हाथ के सामने आकाश चक्कर लगा रहा है। ज्योतिष देवताओं के नाम बहुत दिनों से सुनते रहे हैं किन्तु इसके द्वारा उनके साक्षात दर्शन हो जाते हैं। नक्षत्र-पट में, नक्षत्रों के स्थान, अङ्गरेजी तारीख़ मे इस प्रकार दिए हैं कि जिस दिन से देखना चाहो, उसी दिन के सामने सूर्य को राशि-अंश द्वारा किसी समय का लग्न और रात्रि समय झट बता सकता है। सचमुच गागर में सागर प्रस्तुत है । स्वयसेवकों, स्काउटस, विद्यार्थियों व आकाश-निरीक्षण प्रेमियों को तुरत ही मगाना चाहिये। मूल्य केवल १॥) मात्र।

कुछ प्राप्त प्रसंशापत्रों का सार।

श्री० काशीनाथ शास्त्री विद्यानिधि हरिद्वार से लिखते हैं:—

"मै ने ज्योतिष प्रवेशिका आद्योपान्त देखी। वस्तुतः अपका कार्य प्रशंनीय है जिसके लिए ज्योतिष प्रेमी आपको धन्यवाद दिए विना नहीं रह सकते।"

श्री प० लक्ष्मीनारायण दीनदयाल अवस्थी सारगपुर —

This is a best book on the subject.

श्री०पं०श्रीराम वाजपेई स्काउट कमिश्नर, सेवा समिति कार्यालय, प्रयागः-

From the first few pages which I have been able to go through, so far I consider your work very admirable which will bring the elementry knowledge of Astronomy within grasp of persons with limited knowledge like myself

श्री० प० रामचन्द्र शर्मा बी०ए० सयुक्त प्रदेश सेवा समिति,

स्काउट कमिश्नर, देहली —

I think it will help a good deal in imparting to Scouts an elemantry knowledge of Astronomy. We badly needed a book on the subject in Hindi Really you deserve the indebtedness of the Hindi knowing public

हितैषी (मासिक पत्र) की सम्मति —

"यह छोटी सी पुस्तक विद्वता के साथ लिखी गई है और प्रत्येक विषय भले प्रकार समझाया गया है। विद्वान् और हिन्दी के प्रेमी लेखक द्वारा ऐसी पुस्तक का लिखा जाना वास्तव में हिन्दी भाषा का गौरव है। पुस्तक संग्रहणीय है"

जैनसमाज के सर्वश्रेष्ठ साप्ताहिक 'जैनमित्र' की सम्मति —

"४-५ वर्ष परिश्रम पूर्वक मनन कर यह पुस्तक इसलिए रची गई है कि हिन्दी जानने वालों को बडी सुगमता से ज्योतिष का ज्ञान हो जावे। हर एक विद्यालय में पुस्तक का पठन पाठन होना चाहिये।"

पता—मैनेजर, हिन्दी साहित्य भंडार

मल्हीपुर, पो० सहारनपुर।

Malhipur, P. O, Saharanpur.

सद्विचार पुस्तक—माला

हिन्दी भाषा में उक्त नाम की एक पुस्तक—माला निकली है, इस पुस्तक माला का जैसा नाम है वैसी ही इस की पुस्तकें हैं। इन पुस्तकों मे महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया है। इनके पढने से मनुष्य-जीवन की बहुत सी कठिनाइयां दूर करके शांति मार्ग पर आ सकते हैं। आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिये ये पुस्तकें अमूल्य रत्न हैं, सुख और सफलता में प्रवेश करने के लिये सच्ची कुंजी है। इसके द्वारा नीचे से नीचे गिरा हुआ मनुष्य भी ऊंचे से ऊंचे चढने का साहस कर सकेगा और अपने मनोरथ की सफलता प्राप्त करने में समर्थ होगा।

ये पुस्तकें कैसी उपयोगी हैं इससे स्पष्ट है कि संयुक्त प्रान्त, बिहार प्रान्त, मध्य देश प्रांत और कई रियासतों के शिक्षा विभागों ने इस माला की पुस्तकों को पुस्तकालय तथा विद्यार्थियों को पारितोषिक के लिये स्वीकार किया है और कई पुस्तकों के दो वर्ष के अन्दर तीन २ संस्करण हो चुके हैं, अर्थात कई हजार बिक चुकी हैं। आशा है कि भारतवासी इन्हें पढकर अपने प्राचीन गुण, गौरव को प्राप्त करेंगे।

स्वराज्य के इच्छुकों आत्मउन्नति के अभिलाषियो, सुख और शांति के ढूंढने वालो, इनको पढकर अपना मनोरथ सफल करो। सद्विचार ही मनुष्य के जीवन का सार है अच्छे विचार मन में उत्पन्न होने से ही सफलता की सम्भावना होती है। जैसा चाहो वैसा बन जाओ, आपके अधिकार में है।

——:o:——